Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान-लोक

७५

Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्दर पढ़िए

प्राणियों में प्रणय-लीला —जगदीशप्रसाद अग्रवाल	२
मनुष्य ने मापना सीखा —अवधबिहारीलाल	६
रक्त और हमारा शरीर —सी. एल. संघी	१३
शक्ति का भण्डार, सूर्य —डा. अयोध्याप्रसाद शर्मा	१७
एल्डीहाइड —सत्यकुमार	२२
कोयल —कुँवर सुरेशसिंह	२७
पौधों का कृत्रिम उत्पादन —प्रेमानन्द चन्दोला	३१
नील्स बोर —राजेन्द्रकुमार	३८
द्रव की चतुर्थ अवस्था—प्लाज्मा —जगदीशचन्द्र गोविल	४१
ये विलक्षण चींटियाँ —ओमशंकर वाजपेई	४६

स्थायी स्तम्भ

विचित्र संसार	३६
वैज्ञानिक उपलब्धियाँ	४७
विज्ञान क्लब	५५
इनाम लो	५८
करो और देखो	५६
आपके प्रश्न	६१
तुम्हारी कलम से	६३

अपनी बात

अन्तरराष्ट्रीय सहयोग और सद्भावना की दिशा में परमाणु परीक्षण प्रतिबन्ध निश्चय ही एक महत्त्वपूर्ण मोड़ सिद्ध होगा। इस सन्धि के प्रति भारत के प्रधानमन्त्री श्री नेहरू का यह मन्तव्य अवश्य ही मननीय है—'प्रत्येक शान्ति-प्रेमी को आज परमाणु परीक्षण प्रतिबन्ध सन्धि पर किये गये हस्ताक्षरों का स्वागत करना होगा। यद्यपि यह एक आंशिक सन्धि ही कही जाएगी और यह अकेली ही हमें निरस्त्रीकरण की ओर न ले जा सकेगी, फिर भी यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। मेरे ख्याल से तो यह दो दिशाओं के मध्य एक विभाजक रेखा का काम देगी। इससे हम यह भी आशा रख सकते हैं कि यह हमें ऐसे दूसरे कदम उठाने का दिशासूचन करेगी जो हमें निरस्त्रीकरण की ओर अग्रसर करेंगे। विश्व की शान्ति को सुनिश्चित बनाने में इसका अपना विशिष्ट योग रहेगा।'

इसके समर्थन में भारतीय राष्ट्रीय महिला संघ की सैक्रेटरी श्रीमती चित्रा सेन के नेतृत्व में भारतीय महिलाओं की ओर से सोवियत संघ के अस्थायी कार्यवाहक राजदूत एल. ए. कोरोबिन को एक अनोखी राखी भेंट की गयी है जिस पर लिखा है—

'परमाणु परीक्षणों पर प्रतिबन्ध लगाओ'

विज्ञान-लोक इस आन्दोलन से पूर्णतः सहमत है और विश्व-शान्ति की सुरक्षा के लिए इस दिशा में प्रत्येक ऐसे स्वस्थ कदम का स्वागत करेगा।

वर्ष ४ विज्ञान लोक अंक ७

मूल्य
प्रति : ७५ नये पैसे
वार्षिक : ६ रुपये

सम्पादक : शंकर मेहरा
प्रकाशक : श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगदीशप्रसाद अग्रवाल

बच्चे के लिए माँ के दिल में क्या नहीं होता ? प्यार, स्नेह, वात्सल्य सभी कुछ तो होता है। यह बात नहीं कि मनुष्य में ही माँ का दुलार बच्चों को प्राप्त होता है। दूसरे जन्तुओं में भी मनुष्य की भाँति जन्मजात प्रवृत्तियाँ मौजूद होती हैं। यदि उनके हृदय में स्नेह का सागर हिलोरें ले रहा होता है तो उसी हृदय में प्रणय की हूक भी उठती है। उनमें दो प्राणियों का साहचर्य केवल संतति उत्पन्न करने की इच्छा से नहीं बल्कि सुकोमल इच्छाओं की तृप्ति के लिए भी होता है उनके भी कुछ आदर्श होते हैं। उनका भी कुछ उद्देश्य होता है। उनका प्रेमालाप, उनकी प्रणय-लीला उनके साथी को लुभाने, रिझाने और फुसलाने के दाँव-पेच, उनकी चुहलबाजी, उनका चुलबुलापन तथा उनके परस्पर आकर्षण के पैंतरे आज भी इस क्षेत्र में मनुष्य को मात दे जाते हैं।

पक्षी समाज में मादा की अपेक्षा नर की संख्या अधिक है, इसलिए हर नर को स्त्री-प्राप्ति का सौभाग्य नहीं मिल पाता। नर को बड़ी कोशिशों के बाद मादा का सहवास प्राप्त होता है और इन कोशिशों में उसे हर प्रकार के वशीकरण साधनों का उपयोग करना पड़ता है। चंडूल अपनी प्रणय-क्रीड़ा का कलात्मक प्रदर्शन करते समय पंख फैलाकर, दुम उठाकर, छाती फुलाकर तरह-तरह के हाव-भाव दिखाता है। ऐसे समय यदि कोई प्रतिद्वन्द्वी आ जाए तो उस पर बाज की तरह टूट पड़ता है। मादा झगड़ों के समय चुपचाप उदासीन भाव से बैठी रहती है।

पंखों की विविधता पक्षी को सजा-धजाकर उन्हें उन्मुक्त सौंदर्य का स्वामी बना देती है। उनके गन्धर्व विवाह उनके नक्श-निखार और सौंदर्य पर निर्धारित होते हैं। बीस हजार पक्षियों में से बहुतेरे पक्षी जैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुर्गाबी, कौआ, कबूतर, उल्लू, चिड़िया, चील, गीध आदि में नर और मादा के रंगों में विशेष अन्तर नहीं होता, पर बहुतेरे दूसरे पक्षियों में नर और मादा जोड़ा बाँधने के दिनों में अलग-अलग पोशाक में होते हैं। करछिया बगुला में पीठ और छाती पर सजावट के रेशों से भरे हुए पतले-पतले पंख निकल आते हैं तथा गाय बगुला में इन्हीं दिनों मादा के शरीर पर कुछ नारंगी रंग लिए हुए बादामी पंख उग आते हैं। जलमुर्गी (moorhen) में नर के बदन पर एक काली झलक आ जाती है और सिर पर एक शृंग भी निकल आता है जो अण्डा देने के दिन बीतने पर गिर पड़ता है।

कीट-पतंगे तथा नन्हें कीड़े-मकोड़े चुन-चुनकर खाने वाली चिड़िया केटल ईगरेट (cattle egret) अपने अण्डे को दलदली जगहों में छिपाकर रखती है क्योंकि अधिकतर लोग उन अण्डों को उठा ले जाते हैं। सहवास-काल में इन चिड़ियों का सफेद रंग लुप्त होकर सिर, पीठ तथा सीने के पर कत्थई रंग के हो जाते हैं, चोंच का सिरा लाल तथा आँखें भूरी हो जाती हैं। ऋतु-काल के पश्चात् ये विभिन्न रंगों के पर अदृश्य हो जाते हैं और इनका शरीर पुनः सफेद हो जाता है। इनकी भी प्रणय-मुद्राएँ सारस के जोड़े जैसी होती हैं। ऊँचे स्वर में चहचहाना, फुदकना, चोंच से चोंच मिलाना, पर से पर घिसना तथा गर्दन से गर्दन मिलाना इनकी मुख्य क्रियाएँ हैं।

काग-परिवार में विदेशी राजकुमार (Prince Rudolf), नवाब (Count) तथा स्वर्ग-पक्षी (*Bird of Paradise*) जैसे नामधारी और शोभावान काग भी हैं। प्रणय-काल में प्रकृति इन्हें सिर पर चित्र-विचित्र मुकुट और छैल-छबीले, चटकीले रंगों का खजाना लुटा देती है। किन्हीं-किन्हीं में तो इतने सुन्दर रंग उभर आते हैं कि काग होने का एकाएक आभास ही नहीं होता। राजकुमार तो प्रणय-नृत्य दिखाते-दिखाते पाँवों के सहारे उलटा लटक जाता है और पंख फैलाकर बड़े वेग से कम्पन करता है। एक बार तो इसका कम्पन देखकर पालने वाले को इसके बीमार हो जाने का भ्रम हो गया था और सचमुच ही उसने तत्काल एक दवा भी इसके गले में उतार दी थी!

यह स्वर्ग-पक्षी अपने रंगीन पंखों का प्रदर्शन करता है, संगीत सुनाता है, तरह तरह की मुद्राओं में नाचता है और टहनी से उलटा लटककर नट के से करतब भी दिखाता है—मादा का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोर, कबूतर आदि नाच नाच कर मादा को रिझाते हैं। मोर नाचता है और नाचने में इतना व्यस्त हो जाता है कि उसे अपने तन की सुध नहीं रहती। मोरनियाँ उसके चारों ओर खड़ी हो जाती हैं पर वह नाचता है, नाचता ही जाता है। अपने इन प्रणय नृत्यों द्वारा पक्षी पंखों को निकाल पूँछ को अकड़ाकर पंखे की तरह हिलाकर गौरवमय से उपहासजनक तक मुद्राएँ बनाकर प्रिया से प्यार की भीख माँगते हैं।

बगुले का जोड़ा गृहस्थ जीवन की देहरी पर

कबूतर का ढंग अजीब है। मादा दाना चुगती रहती है, नर एकाएक उसके पास गला फुलाकर नाचने लगता है। कुछ आगे बढ़ता है फिर पीछे लौट आता है और इस प्रकार उसे रिझाने की कोशिश करता है। सुन्दर आकाश में उड़ने वाले पक्षी चील आदि आकाश में ही नृत्य करते हैं। उनका यह नृत्य गोलाकार रूप में होता है। व्योममंडल में वह देर तक अपने करिश्मे दिखाते हैं और तब नीचे आकर मादा के संग बैठते हैं। पहले मादा नर के प्रणयगीत तथा प्रणयनृत्य की ओर उदासीनता दिखाती है। वह चुपचाप दाने चुगती रहती है मानो नर की प्रणय परीक्षा ले रही हो। अन्त में जब वह उसके हृदय पर काफी प्रभाव डाल लेता है, उसके अन्दर काम संचार हो जाता है तो सचेष्ट होकर जाहिर करती है कि उसने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। उसके साथ जोड़ा बाँधना उसे मंजूर है।

बटेरों (quail) में नर नहीं बल्कि मादा अपनी भाव-भंगिमाओं से नरों को अपनी ओर आकर्षित करती है। उनमें से किसी एक के साथ जोड़ा बाँधकर घर बनाती है, अण्डे देती है और फिर उस पर अण्डों का भार छोड़कर गायब हो जाती है। दो-तीन दिन में ही फिर किसी और के साथ जोड़ा बाँधती है, अण्डे देती है और फिर किसी तीसरे की तलाश में घर छोड़कर निकल पड़ती है। जनन ऋतु में वह एक दो तीन नहीं बल्कि अनेक नरों के साथ इसी प्रकार जोड़ा बाँधती है। बया पक्षी के नर एक से अधिक मादाओं के साथ जोड़ा बाँधते हैं।

गजपन या तिंगर (black winged stilt) में गर्मियों में नर के निचले सफेद हिस्सों में गुलाबीपन आ जाता है तथा सिर का ऊपरी हिस्सा काला हो जाता है और कहीं-कहीं उसमें सफेदी आ जाती है। गहे वाला (ruft) में नर की गर्दन पर बड़े-बड़े पंख निकल आते हैं। पक्षियों में ज्यों-ज्यों उमर बढ़ती जाती है, उनका सौन्दर्य, उनका रूप और आकर्षण भी बढ़ता है। ढलती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

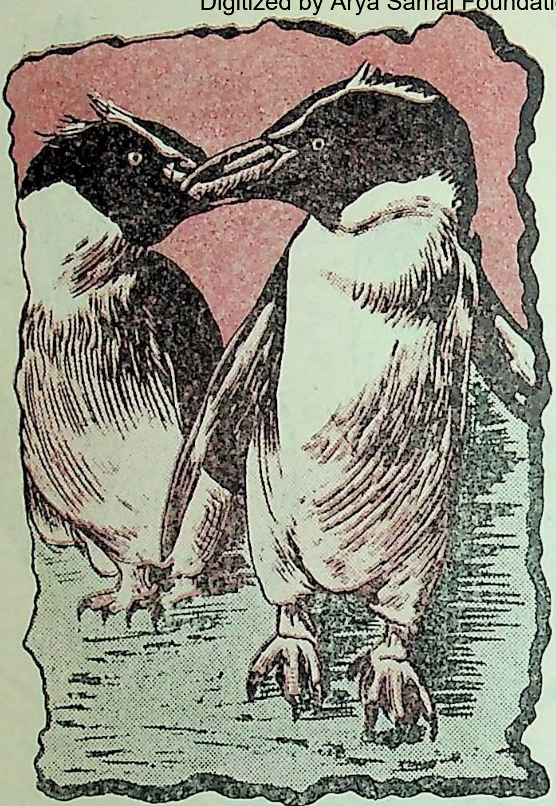

यह मारकोनी पेंगुइन का जोड़ा

उमर पक्षियों के सौन्दर्य-उत्कर्ष का समय है। जिस पक्षी के परों का रंग पूर्णतया विकसित होता है उसे जोड़ा बाँधने में अधिक कठिनाई अथवा विलम्ब नहीं होता।

गिरगटमार बाज में प्रत्येक नर के रनिवास में दो रानियाँ होती हैं पर विलायती कोयल के कई पति होते हैं। पक्षियों में प्रत्येक गृहस्थ की अपनी जमीन होती है जिसके आसपास वह अपना घोंसला बनाता है। उसकी जमीन में किसी भी दूसरे पक्षी का दखलअन्दाजी करना ठीक नहीं समझा जाता। प्यार की विजय प्राप्ति पर नर या मादा या दोनों मिलकर अपना घर बनाते हैं जो सीधे-सादे पत्तों, तिनकों, पहले के बने-बनाये छिद्रों, जमीन में कुरेदे सुराखों, कीचड़ से बने घरों, घास के कटोरीनुमा अथवा डंठल के गेंदनुमा घोंसलों से लगाकर बया के लटकते हुए सुन्दर महल सा पत्तों के सिले बटुवे तक हो सकता है।

सर्वभक्षी मख्यो (emfids) में घनिष्ठता सोच-समझकर बढ़ायी जाती है। लड़का-लड़की एक दूसरे के स्वभाव से भलीभाँति परिचित होने के बाद विवाह सूत्र में बँधते हैं। 'डेटिंग' अकसर होती रहती है। नर मादा के लिए उपहार स्वरूप छोटे-छोटे कीड़े, रेशम के धागे, सुन्दर-सा पंख, फूल की पत्ती या किसी सिगरेट या मिठाई के पैकेट का ऊपर के कागज का टुकड़ा उसका चित्त चुराने के लिए पेश करता है। पेंगुइन (penguin) पत्थर के टुकड़े उठा-उठाकर अपनी प्रेमिका को भेंट करता है। घोंघा (common garden snail) अपनी प्रेयसी की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए बड़े-बड़े चमकदार टुकड़े उसकी स्वीकृति के लिए समर्पित करता है।

यह मुर्गा भी अपनी मादा को रिझाने के लिए सब कुछ कर गुजरने में किसी से पीछे नहीं

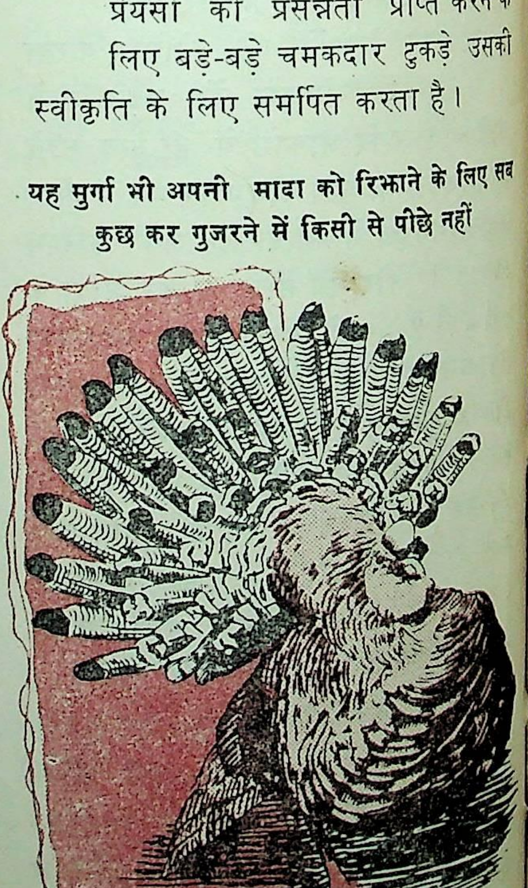

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

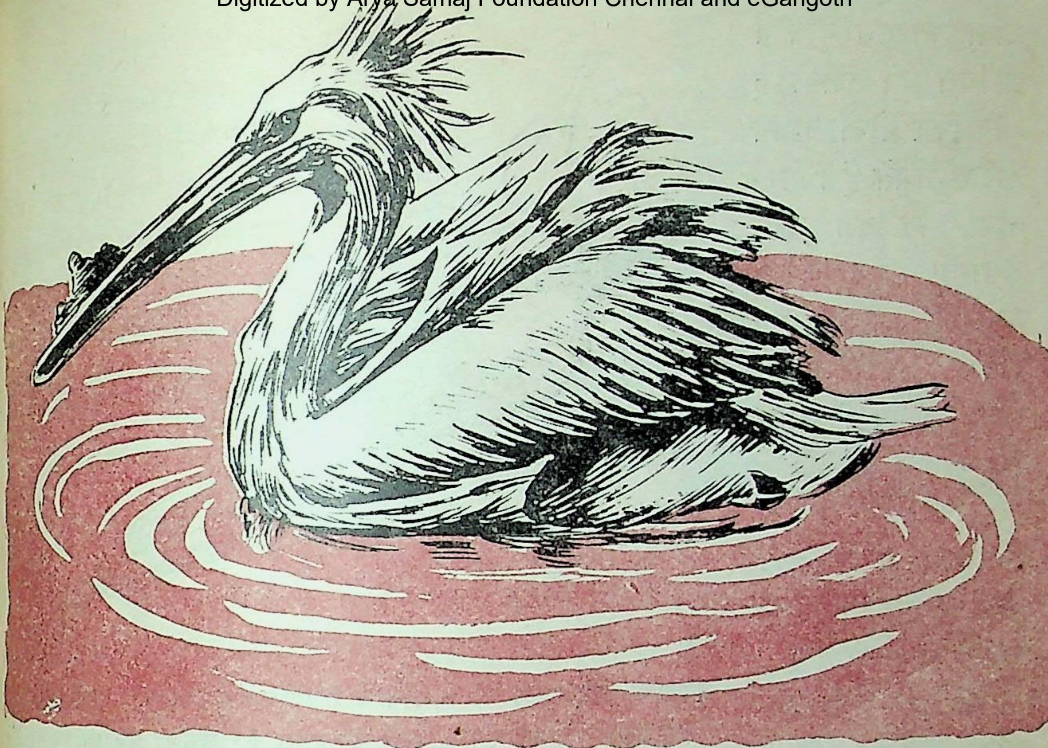

नर पेलिकन की चोंच के ऊपर प्रणयावस्था में एक चौड़ी अस्थि-पट्टी उभर आती है जो प्रणयकाल के पश्चात् लुप्त भी हो जाती है

गायन पक्षी समाज का जन्मसिद्ध अधिकार है। कोयल की कूक और चिड़ियों की चहचहाहट वसन्त ऋतु में प्रस्फुटित और मुखरित होकर मदन को चुनौती देती है। पक्षियों में वाद्ययन्त्र की रचना मनोरंजन प्रदान कर उन्हें मनमोहक बनाने के लिए हुई है। गाने वाले पक्षी जब काम-विह्वल होते हैं तो जोर-जोर से गाना शुरू कर देते हैं। न जाने कहाँ से इनके गलों में सोज टपकता है। बोल में मिठास, स्वर में मधुरिमा और हृदय में जोश व खरोश की बाढ़ आ जाती है और नर दिन-रात प्रणयगीत गाने में तल्लीन रहते हैं। कोयल, पपीहा आदि पक्षियों के निपुण तानसेन पेड़ की डाल पर बैठकर ऊँचे गले से गाते हैं। चंडूल (lark) जैसे पक्षी आकाश में उड़-उड़कर गाते रहते हैं। वसन्त ऋतु में चंडूल नर को मादा के साथ गाकर, रिझाकर प्रणय भिक्षा माँगते हुए देखा जा सकता है। कुछ पक्षी जैसे दाबिल (spoon bill) जिन्हें गाना नहीं आता वह गले से आवाज करते हैं, चिल्लाते हैं और जोर से बोलते हैं। वह क्या कहते हैं यह सिवाय मादा के दूसरा नहीं समझ पाता।

पक्षियों में मादा किसी नर के साथ दाम्पत्य सूत्र में बँध जाती है तो फिर उसे छोड़ती नहीं। सुन्दर से सुन्दर पर वाले किसी दूसरे नर के आ जाने अथवा लुभाने के प्रयत्न पर भी वह उसका साथ नहीं छोड़ती। सारस (crane) में नर-मादा में बड़ा प्रेम होता है। जोड़ा बाँधने के दिनों में वे दोनों साथ मिलकर खूब नाचते हैं। पहले नर मादा के पास लकड़ी का टुकड़ा लेकर जाता है फिर दोनों पैर एक साथ जोड़कर कूदता है, नाचता है, पंख फड़फड़ाता है और संगीत की अभिव्यक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता है । शीघ्र ही मादा भी उस नृत्य में शामिल हो जाती है और फिर दोनों तन्मय होकर नाचते हैं । नर-मादा का प्रेम अटूट होता है । एक के मर जाने के बाद दूसरा जीवन भर अकेला रहता है, पुनः जोड़ा नहीं बाँधता ।

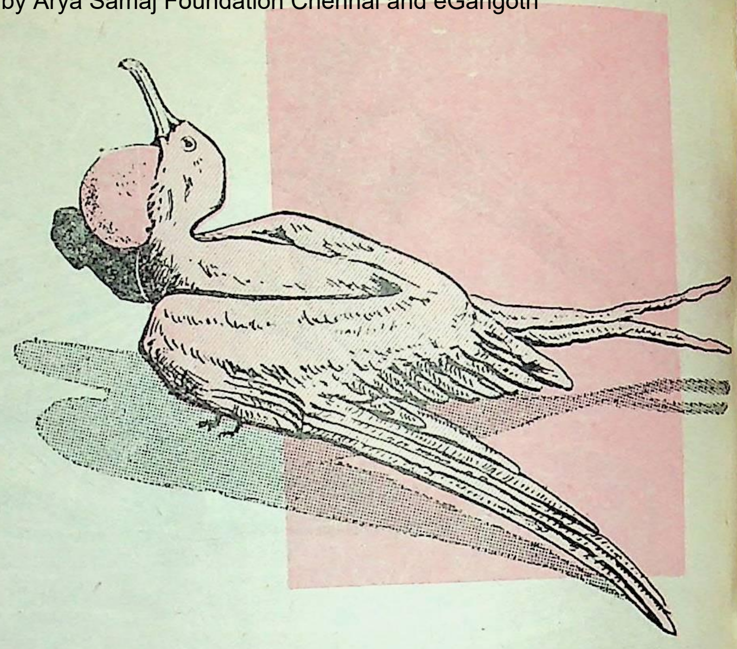

प्रणय के लिए मादा को रिझाने के निमित्त यह अद्भुत पक्षी जोर लगा कर अपने गले की रंगीन थैली को फुला कर उसका प्रदर्शन करता है।

पनकौआ (cormorant) में भी नर-मादा का साथ जिन्दगी भर के लिए होता है । एक के मर जाने पर दूसरा अकेला जीवन बिताता है । दूसरे पनकौओं के साथ मिलना-जुलना भी त्याग देता है । चाँद और चकोर मेघ और मोर, गुल और बुलबुल की कथाओं से साहित्य उसी प्रकार भरा पड़ा है जिस प्रकार तोता और मैना के किस्सों से पंचतंत्र, पर सुरखाब (ruddy shield rake) जिसे चकवा-चकवी भी कहते हैं, का प्रेम एक आदर्श प्रेम होता है । यह हीर और राँझा और शशी पूर्णू रात को जब भोजन की तलाश में एक-दूसरे से अलग हो जाते हैं तो रात के सन्नाटे में रात भर एक-दूसरे को बोल-बोलकर खोजते रहते हैं । [क्रमशः]

पंचम अन्तरिक्ष यात्री बाइकोव्स्की से पूछा गया—

आपको सर्वाधिक प्रिय क्या लगता है ?

सरलता

मानव को क्या वस्तु ऊपर उठाती है ?

स्वप्न

और, क्या वस्तु गिराती है ?

स्वप्न का अभाव

वीरता क्या है ?

मानवता स्वयं वीरता है

मातृभूमि के बारे में आपके क्या विचार हैं ?

मातृभूमि ही सब कुछ है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

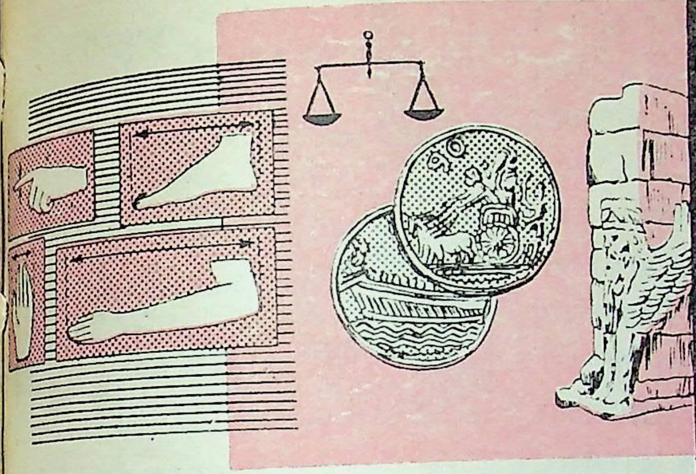

मनुष्य ने मापना सीखा

अवधबिहारीलाल

प्रारम्भ में विनिमय के लिए सिक्के तो थे ही नहीं। वस्तु का विनिमय वस्तु से ही होता था। उसमें भी कम या अधिक का संकेत किसी न किसी प्रकार करना आवश्यक होता ही होगा। कदाचित तभी से नापने के लिए हाथ-पाँव का सहारा लिया जाने लगा, क्योंकि अन्य गणितीय साधन उपलब्ध नहीं थे। उदाहरणार्थ जिसके पास हिरन की एक खाल होगी और वह दूसरे से दो भेड़ों के बदले में बदलना चाहता होगा तो वह अपनी हिरन की खाल दिखाकर एक अँगुली उठाएगा और सामने वाले की भेड़ों की ओर इशारा करके दो अँगुली दिखाएगा। तब कहीं सौदा पटेगा। अँगुली अँगूठों की वह गणना भी आखिर १० तक ही सीमित रही होगी। प्राणीशास्त्र में अँगुली की अस्थियों को डिजिट्स (digits) कहते हैं। अतः १ से ९ तक के अंक भी डिजिट्स ही कहलाये।

अँगुलियों पर दस तक की गिनती वाली बात भी तब बढ़ निकली जब मानव ने पशु-पालन प्रारम्भ किया। तब उसने कंकड़-पत्थर बटोरने शुरू किये। एक भेड़ का एक कंकड़ करके १०-१० कंकड़ की जितनी ढेरियाँ उसके पास जमा होने लगीं उतनी ही भेड़ों का वह मालिक समझा जाने लगा। जल्द ही वह कंकड़ के ढेरों से भी ऊब गया और लकड़ी की पट्टी को उपयोग में लाने लगा। एक-एक अंक के लिए उसमें एक-एक खांचा बना लिया। ऐसी खांचे वाली लकड़ी को टाली स्टिक (Tally Stick) कहा जाने लगा। लकड़ी के अतिरिक्त उसने एक रस्सी भी रखना प्रारम्भ किया जिसमें प्रत्येक गणना पर एक-एक गाँठ लगाता जाता था।

गणना के लिए लिखित चिह्न का प्रयोग प्राचीन मिस्रवासियों ने आज से ५-६ हजार वर्ष पूर्व प्रारम्भ किया। प्रत्येक अंक के लिए वे एक खड़ी रेखा खींच दिया करते थे। यह रेखा उन्होंने संभवतः अँगुली की आकृति से समानता दर्शाने को निर्धारित की थी। १०० और १००० के लिए भी उन्होंने विभिन्न तथा विशिष्ट चिह्न निर्धारित किये।

इस प्रकार मनुष्य ने गणित सरल कर लिया। प्राचीन बेबीलोन निवासी चिकनी मिट्टी की तख्तियाँ बनाकर उन पर अपने हिसाब अंकित करते थे। उन पट्टियों को सहज ही टूटने से बचाने के लिए बर्तन की तरह आग में पका भी लेते थे। मिस्रवासी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनसे भी आगे थे और वे कागज का काम-चलाऊ स्वरूप भी बना चुके थे। अतः वे अपने हिसाब-किताब उन कागजों पर खड़ी रेखाओं के रूप में रखने लगे। इसी समय ग्रीक-निवासी भी ५, ५०, ५०० तथा १०, १००, १००० के लिए अलग चिह्न निर्धारित कर चुके थे। उन्होंने ५ को 'वी' (V) का आकार सम्भवतः इसीलिए दिया कि हाथ की फैली हुई पाँचों अँगुलियाँ 'वी' के आकार में ही दिखती हैं। इसी प्रकार दोनों हाथों की अँगुलियाँ एक के ऊपर दूसरी फैलाने से 'एक्स' (X) की जो आकृति बनती है उसे १० का चिह्न माना गया।

प्रारम्भ में मनुष्य को लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई के ही माप की आवश्यकता पड़ती रही। तब उसकी आवश्यकताएँ सीमित थीं। जब-जब उसे नयी झोंपड़ी बनानी होती तो प्रायः ही वह कहता—'मेरी झोंपड़ी उतने कदम लम्बी होगी जितनी अँगुलियाँ मेरे दोनों हाथों में हैं। चौड़ाई उतने कदम होगी जितने कुल हाथ-पाँव मेरे हैं और दीवार उतनी मोटी होगी जितना लम्बा मेरा एक हाथ है। इसकी ऊँचाई इतनी रखूँगा कि मेरे गाँव का सबसे ऊँचा आदमी आराम से अन्दर आ सके।'

मिस्रवासियों द्वारा निर्धारित हाथ, पाँव और अँगुलियों के माप इस प्रकार थे :

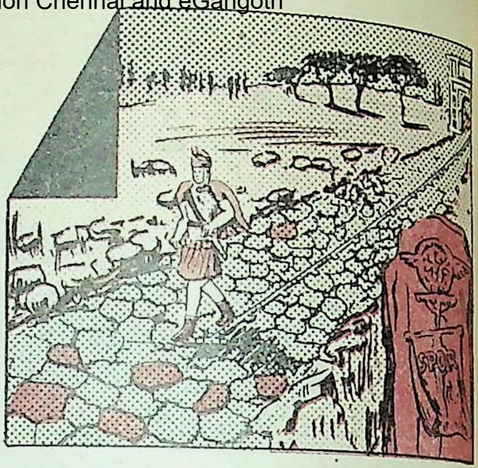

एक हजार कदम बराबर एक मील—प्राचीन रोमन-पद्धति

एक अँगुली की चौड़ाई के बराबर एक डिजिट, चार डिजिट के बराबर एक पंजा, दो पंजों के बराबर एक स्पान (span), दो स्पान के बराबर एक क्यूबिट (cubit) अर्थात् एक हाथ की लम्बाई तथा अन्त में पाँव की एड़ी से अँगूठे के सिरे तक एक फुट।

ग्रीकवासियों ने १००० कदम के एक मील का अपना अलग ही मान निर्धारित किया था।

इसी प्रकार आंग्लभाषी देशों ने किंचित् परिवर्तन के साथ अपने मान निम्न भाँति निर्धारित किये :

अँगूठे की चौड़ाई बराबर एक इंच, पाँव की लम्बाई बराबर एक फुट तथा फैलाये हुए एक हाथ की अँगुली के सिरे से

लेन-देन का लेखा—प्राचीन पद्धति। काठ की इस पट्टी को टाली स्टिक कहते थे। लेन-देन की संख्या का हिसाब इसमें खांचे बनाकर इसे बीच में से चीरकर लेनदार और देनदार एक-एक टुकड़ा अपने पास रख लेते थे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

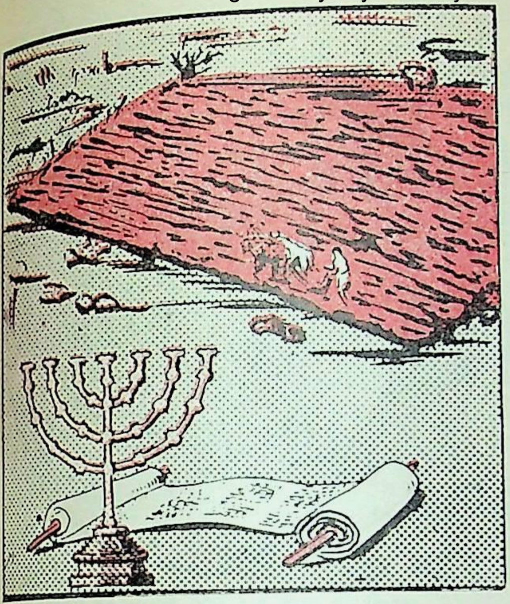

प्राचीन यहूदियों द्वारा भूमि के माप का मान—**भूमि का एक इतना निर्धारित खण्ड जिसे दो बैलों की जोड़ी सुबह से शाम तक पूरी जोत सके**

नाक की नोक तक एक गज। गज मापने का यह ढंग तो आज भी हमारे अल्प शिक्षित समाज में अधिकता से देखने को मिलता है। देहातों में कपड़े की माप इसी प्रकार सहज ही कर लेते हैं। प्रारम्भ में इसमें भी तब कठिनाई पड़ने लगी जब लम्बे हाथों वाला ग्राहक छोटे हाथ वाले दूकानदार से कपड़ा खरीदता था। अतः इसके लिए भी एक निर्धारित माप रखने की आवश्यकता पड़ी। दूसरी ओर मिस्रवासियों द्वारा निर्धारित क्यूबिट की माप लम्बे-चौड़े खेतों की पैमाइश में सुविधाजनक सिद्ध न हुई। अतः प्रयोगस्वरूप खेतों की पैमाइश के लिए एक ऐसा भूमिखण्ड मापक रखा गया जिसे सुबह से शाम तक के एक दिन में दो बैलों युक्त हल से जोता जा सके।

अंकों का निर्धारण हो जाने पर गिनने, जोड़ने और घटाने के लिए गिनतारा (abacus) आविष्कृत किया गया। देश-देश ने अपने विभिन्न गिनतारे बनाये। मिस्र और बेबीलोन के गिनतारे का प्रारम्भिक स्वरूप केवल मिट्टी की एक गड्ढेदार तख्ती का था। जितने अंक जोड़ने होते थे, उन गड्ढों में डाल दिये जाते थे और घटाने होते थे उतने निकाल लिये जाते थे। उन गिनतारों द्वारा जोड़-बाकी ही सम्भव था, गुणा-भाग नहीं।

गणित के विकास में भारत का भी प्रमुख स्थान है। भारत-आविष्कृत अंकप्रणाली को अरब निवासियों ने देश-विदेशों में फैलाया। तभी यह सम्भव हो सका कि केवल १ से ९ तक के अंकों से ही इकाई, दहाई, सैकड़ा, हजार आदि लम्बी से लम्बी संख्या सरलतम रूप में लिखी जा सके।

समय के साथ-साथ मनुष्य की आवश्यकताएँ तथा व्यापार का विस्तार बढ़ता चला। वस्तुओं की माप, उनकी भिन्न-भिन्न तौलें तथा मुद्राओं, सिक्कों की गिनती रखने के कार्य भी बढ़ते चले। अतः अंकों का हिसाब रखने के लिए अंकगणित (arithmetic), विविध मापों के लिए ज्यामिति (geometry), तथा त्रिकोणमिति और गतिशील वस्तुओं के अध्ययन के लिए कलन (calculus) का आविष्कार किया गया। इन सबमें भी समीकरणों के बगैर हिसाबों की फैलावट में अत्यधिक विस्तार तथा समय लगने लगा। इस कमी को दूर करने के लिए बीजगणित (algebra) का आविष्कार किया गया।

यह सब होने पर भी यह समस्या तो बनी ही रही कि देश-देश ने माप और तौल के लिए जो अपने भिन्न-भिन्न मानक बना रखे थे उनके आधार पर पारस्परिक विनिमय कैसे किया जाए? इसके हलस्वरूप सन् १७९५ में सर्वप्रथम फ्रान्स ने मीटरिक प्रणाली का आविष्कार किया। इस प्रणाली को पृथ्वी और जल के आधार पर इस प्रकार निर्धारित किया गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लम्ब-माप के लिए मीटर का निर्धारण

इसके लिए पृथ्वी के उत्तर ध्रुव से दक्षिण ध्रुव को मिलाते हुए एक वृत्त खींचा गया जिसे मिरीडियन (meridian) कहा गया। मिरीडियन का एक चौथाई भाग क्वाड्रैण्ट (quadrant) कहलाया। एक क्वाड्रैण्ट को एक करोड़ समभागों में बाँटा गया और उस एक करोड़वें भाग को मीटर कहा गया। इस लम्बाई की शुद्ध माप प्लेटिनम की एक छड़ पर अंकित की हुई आज भी पेरिस के म्यूजियम में सुरक्षित रखी है। एक मीटर की लम्बाई लगभग ३९·५६ इंच है। इस मीटर का एक सौवाँ भाग सेन्टीमीटर कहलाता है।

इसी प्रकार द्रवों के भी माप निर्धारित किये गये। एक-एक से.मी. की लम्बाई, चौड़ाई तथा मोटाई के गुणनफल को एक घन से.मी. कहा गया। थिम्बल (Thimble) नामक एक विशिष्ट माप के पात्र में एक घन से.मी. ही पानी आता है। इतने पानी का भार एक ग्राम होता है। एक ब्रिटिश पौण्ड में लगभग ४५४ ग्राम होते हैं।

स्टैण्डर्ड किलोग्राम का सुरक्षित मान

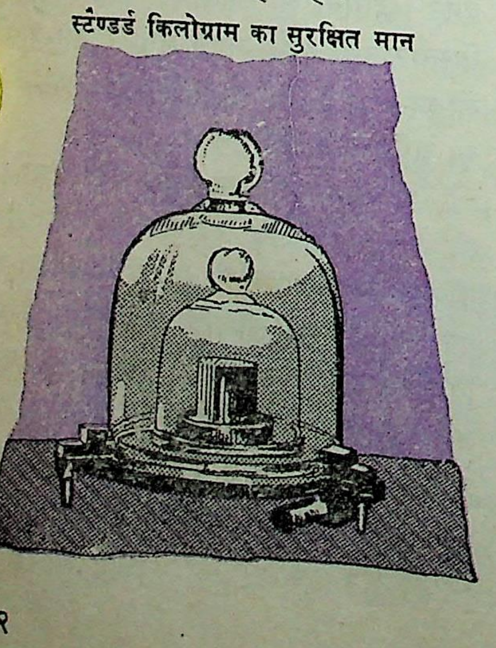

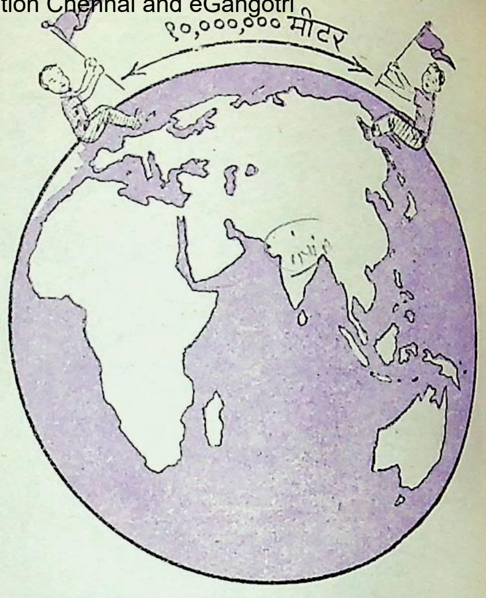

पृथ्वी के वृत्त का एक करोड़वाँ भाग एक मीटर माना गया था

इस प्रकार माप, तौल आदि के मान निर्धारित हो जाने से मोटे और सरसरे तौर पर लिये जाते रहे मापों की आवश्यकता न रही। क्रमशः अधिकाधिक शुद्ध तथा सूक्ष्म मापों की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। १७वीं शताब्दी में वर्नियर (P. Vernier) ने इंजीनियरिंग के कार्यों में सूक्ष्म मापन के लिए केलिपर्स (callipers) नामक जो उपकरण तैयार किया वह आज भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। केलिपर्स के द्वारा एक इंच के १०००वें भाग तक को शुद्धता से मापा जा सकता है। तत्पश्चात् माइक्रोमीटर (micrometer) द्वारा यह सम्भव हो सका कि एक मीटर के दस लाखवें भाग को और आंस्ट्रम (angstrum) द्वारा एक माइक्रान के १० हजारवें भाग को भी मापा जा सके। विशेष प्रकार की रश्मियों के तरंग-दैर्घ्य मापने के लिए ये दोनों उपकरण अत्यन्त उपयोगी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सी. एल. संघी

रक्त तरल टिशूज का एक जाल है, जो हमारे शरीर की शिराओं और धमनियों में प्रवाहित होता रहता है। इससे शरीर के सभी अंगों में अन्तर-संचार व्यवस्था बनी रहती है। रक्त ही शरीर के लिए उपयोगी तथा पोषक पदार्थों को—जैसे आक्सीजन जल तथा आहार—शरीर के विभिन्न भागों में पहुँचाता है और यही कार्बन डाइआक्साइड तथा पाचन क्रिया से बने निरर्थक तत्त्वों को शरीर से गन्दे तत्त्व बाहर निकालने वाले अंगों—अर्थात् फेफड़ों, गुरदा, त्वचा और अंतड़ियों—तक पहुँचाता है। रक्त ताप का रेगुलेटर भी है और इसी के द्वारा हमारे शरीर का ताप सामान्य बना रहता है।

रक्त शरीर में कैसे प्रवाह करता है

आज यह तो सब जानते हैं कि रक्त हमारे शरीर में निरन्तर प्रवाहित होता रहता है, परन्तु इस बात की खोज सबसे पहले विलियम हारवे ने १६१६ में की थी कि शिराओं में रक्त का संचार हृदय करता है। उन्होंने यह भी बताया कि हृदय के दायें और बायें कोषों में कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। रक्त हृदय के दायें कोष से फेफड़ों में होकर बायें कोष में पहुँचता है। एक स्वस्थ मनुष्य के पूर्ण विश्राम की स्थिति में रक्त का दबाव, हृदय के संकुचन के समय १०० से १२५ मि. मी. और हृदय के फैलने की अवस्था में ६० से ७५ मि. मी. होता है। आयु के साथ रक्त का दबाव बढ़ता है।

रक्त की रचना

रक्त की मात्रा शरीर के कुंल भार की ७ से ८ प्रतिशत तक होती है अर्थात् एक १२५ पौंड भार वाले व्यक्ति के अन्दर लगभग १० पौंड रक्त होगा। रक्त की एक बूंद में २५० लाख लाल-कोषाणु, ४० लाख श्वेत कोषाणु तथा १५० लाख प्लेटलेट्स होते हैं जो प्लाज्मा नामक तरल पदार्थ में तैरते रहते हैं। प्लाज्मा एक द्रव होता है जिसमें ७-८ प्रतिशत प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, चरबी, क्षार और हारमोन का मिश्रण होता है।

रक्त कोषाणुओं के कार्य

रक्त के लाल कोषाणु फेफड़ों से शरीर में आक्सीजन पहुँचाते हैं। श्वेत कोषाणु बीमारियों के कीटाणुओं को नष्ट करते हैं तथा प्लेटलेट्स (बिम्बाणु) रक्त बहने की दशा में घाव के स्थान पर रक्त का थक्का बनाकर उसे जमाने में सहायता करके उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहना रोकते हैं। प्लाज्मा के ग्लोबलिन नामक प्रोटीन में एक और तत्त्व होता है जिसे 'एण्टीबाडी' कहते हैं। एण्टीबाडी का कार्य प्रतिरक्षात्मक होता है और यह रोगों के कीटाणुओं को स्वच्छन्दतापूर्वक शरीर में विचरण करने से रोकते हैं तथा उन्हें निष्क्रिय भी बना देते हैं।

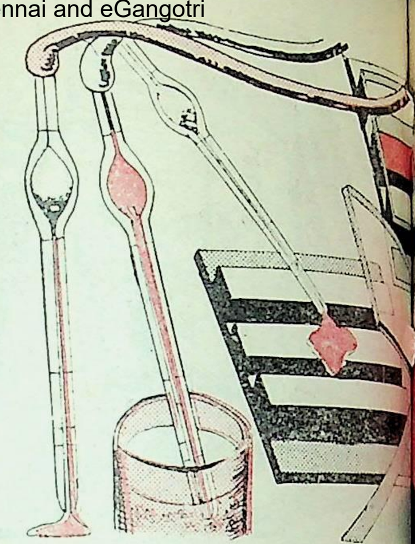

रक्त-कोशिकाओं का संख्या-निर्धारण—रक्त ... कांच ... में मिश्रण द्वारा तनु (dilute) कर लिया जाता है ... को एक ... रखकर सूक्ष्मदर्शी की सहायता से एक ... रक्त-को...

रक्त के प्रकार

मानव शरीर में रक्त का होना तो एक आवश्यक तथ्य है, किन्तु सभी मनुष्यों का रक्त एक समान नहीं होता। यहाँ तक कि भाई-भाई और माता-पुत्री के रक्त में भी भिन्नता पायी जाती है। डा. कार्ल-लेडस्ट्राइनर ने रक्त को चार भागों में विभाजित किया। प्रत्येक अपनी विशेषताओं के कारण एक-दूसरे से असंगत तथा असंयोज्य है। रक्त के चार वर्ग इस प्रकार हैं—ए, बी, एबी तथा ओ। इनमें से फिर प्रत्येक वर्ग को आर. एच. पाजिटिव और आर. एच. निगेटिव उपवर्गों में विभाजित किया गया है। कुछ विशेष अवस्थाओं को छोड़कर सभी रोगियों को उनके अपने ही रक्त वर्ग का रक्त संक्रामित किया जाना चाहिए, अन्यथा प्रतिकूल प्रतिक्रिया इतनी भयंकर हो सकती है कि परिणामस्वरूप मृत्यु हो जाये।

रक्त वर्ग का ज्ञान कैसे किया जाता है

प्रयोगशाला में रक्त वर्ग का निर्धारण एक सरल रीति से किया जाता है। कांच की एक स्लाइड के एक सिरे पर एन्टी-ए-सीरम तथा दूसरे पर एन्टी-बी-सीरम रख देते हैं। फिर दोनों सिरों पर एक-एक बूंद रक्त की डालकर दो मिनट बाद देखते हैं कि कौनसे सिरे पर रक्त जकड़ा जाता है।

(१) यदि केवल एन्टी-ए-सीरम रक्त को जकड़ता है तो रक्त का वर्ग 'ए' होगा।

हमारी पसलियों जैसी अस्थियों की मज्जा में भी रक्त-कोशिकाएँ विकसित होकर रक्त-प्रवाह में ... पदार्थ सामने आ जा...

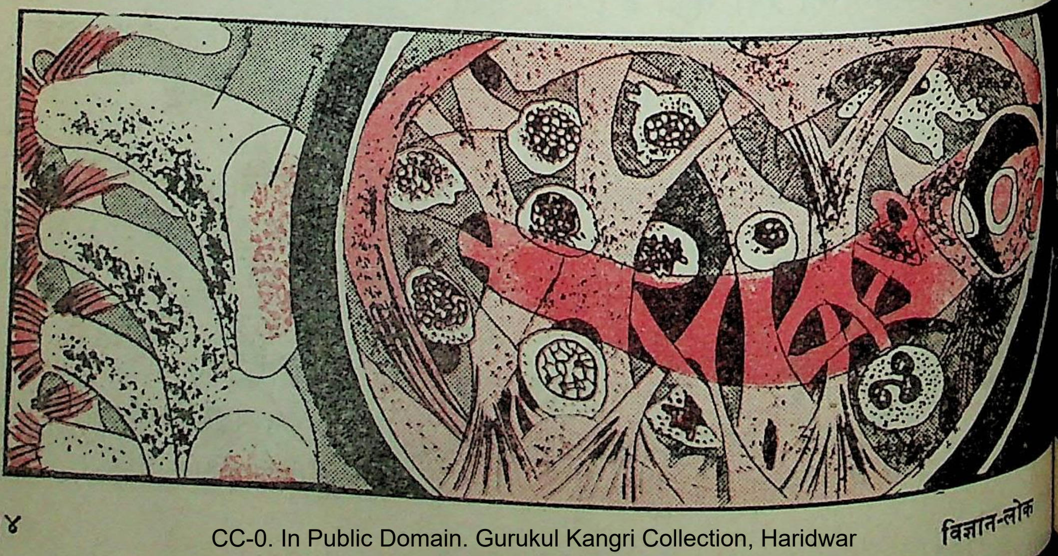

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—रक्त ... कांच की नली में लेकर एक विशिष्ट द्रव ...या जाता है ... को एक जालीदार गणक प्लेट (grid) पर एक ... रक्त-कोशिकाओं की संख्या गिन ली जाती है

(२) यदि केवल एन्टी-बी-सीरम रक्त को जकड़ता है तो रक्त का वर्ग 'बी' होगा।

(३) यदि दोनों ही सिरों पर रक्त जकड़ा जाता है तो रक्त का वर्ग 'एबी' होगा।

(४) यदि किसी भी सिरे पर रक्त नहीं जकड़ा जाता है तो रक्त का वर्ग 'ओ' होगा। 'ओ' वर्ग का रक्त सभी वर्गों वाले रोगियों को दिया जा सकता है।

एक और तत्त्व रीसस यदि रक्त में विद्यमान हो तो उसे आर. एच. पाजिटिव अन्यथा आर. एच. निगेटिव रक्त कहते हैं।

रक्त परीक्षण से चिकित्सा में लाभ

शल्य चिकित्सा के लिए डाक्टर रक्त परीक्षण द्वारा यह पता लगाता है कि रक्त संक्रामण क्रिया के लिए किस वर्ग का उपलब्ध करना आवश्यक है और रक्त पिंड बनने के समय की जानकारी भी की जाती है, क्योंकि यदि रक्त का प्रवाह बन्द न हो और रक्त पिंड न बने तो मृत्यु की आशंका हो जाती है।

रक्त परीक्षण द्वारा हमें और भी कई लाभ होते हैं—जैसे यदि कोई बालक विष निगल लेता है तो रक्त परीक्षण द्वारा क्षण भर में पता चल जाएगा कि विष कौनसा था और तुरन्त उपचार आरम्भ करके बालक को मौत के मुँह से बचाया जा सकता है। जब रोग के कारण शरीर में काफी व्यवधान पड़ जाता है तो रोगी के रक्त परीक्षण से रोग के लक्षण सही प्रकार से ज्ञात हो जाते हैं। रोग के मध्य में रक्त परीक्षणों से यह भी पता चलता रहता है कि रोग में कितना सुधार हुआ है और दी हुई औषधि का क्या प्रभाव पड़ा है। आजकल जो रक्त परीक्षण किये जाते हैं उनसे प्रायः यह पता

...प्रवाह में ... आ जाते ...। रक्त की श्वेत कोशिकाएँ हमारे शरीर के प्रहरियों का काम देती हैं और जो भी विजातीय ... बाहर करती हैं

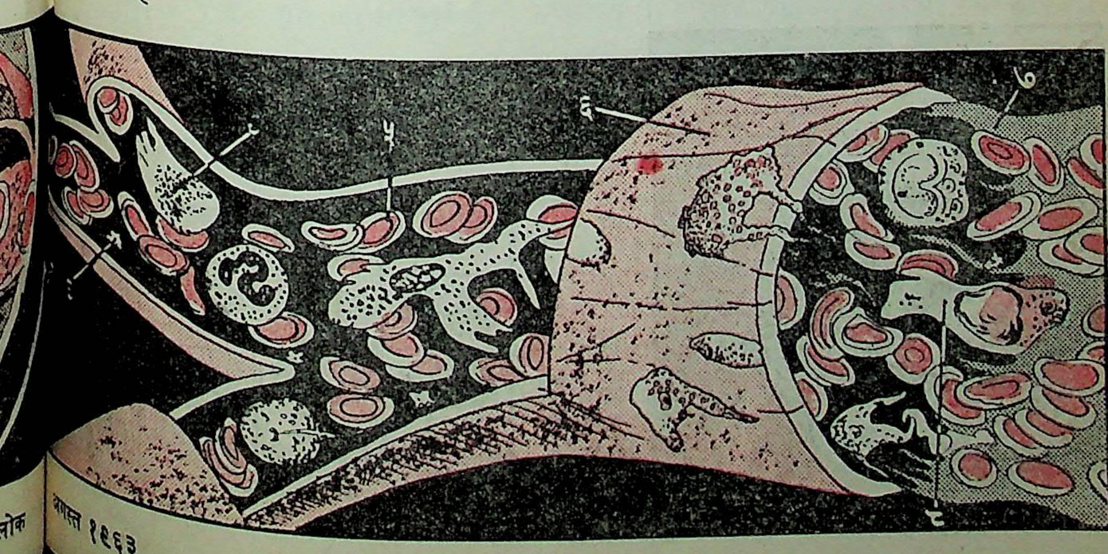

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलता है कि शरीर के किसी अंग में रोग सक्रिय है या नहीं।

रक्त संक्रामण की आवश्यकता

रक्त संक्रामण निम्न परिस्थितियों में आवश्यक है।

(१) एनीमिया, (२) तीव्र विष—जैसे कार्बन-मोनोआक्साइड जो हीमोग्लोबिन की आक्सीजन प्रवाहक क्षमता को नष्ट कर देता है, (३) आघात जिनसे अत्यधिक रक्त स्राव हो जाए, (४) रक्त के रोग, (५) जल जाना, (६) प्रसव के समय यदि अधिक स्राव हो जाए, (७) अत्यधिक चिन्ताओं के कारण यदि हृदय बैठने लग जाए, (८) दुर्घटना, (९) आर. एच. तत्त्व सम्बन्धी बच्चों में और (१०) तपेदिक (क्षय) और पुराने रोगों में, जिनके कारण रोगी बहुत निर्बल हो गया हो।

रक्त के उपयोग की अवधि

वर्तमान घोलों—जैसे सोडियम साइट्रेट द्वारा रक्त को २१ दिनों तक उपयोग के योग्य रखा जा सकता है। इसके पश्चात् यह बिगड़ जाता है और संक्रामण के उपयुक्त नहीं रहता। २१ दिनों के पश्चात् भी रक्त को बेकार नहीं जाने दिया जाता। ऐसे रक्त से 'प्लाज्मा' और प्लाज्मा के उत्पाद—जैसे फिब्रिनोजिन, जो रक्त पिंडो के बनाने में सहायक होते हैं, जैसे महत्त्वपूर्ण पदार्थ तैयार कर लिये जाते हैं।

रक्त-दान का महत्त्व

हमारे शरीर में १० पौंड से भी अधिक रक्त प्रवाह करता रहता है। यदि इसमें से हम एक पौंड रक्त, बीमारों और घायल सैनिकों के लिए दान करते हैं तो इससे हमारे शरीर पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता और न ही रक्त देते समय हमें कोई कष्ट होता है। इस प्रकार जो रक्त दिया जाता है उसकी पूर्ति लगभग ६ सप्ताह में हो जाती है। रक्तदान का महत्त्व वही समझ सकता है जिसका कोई प्रियजन रक्त के अभाव में अस्पताल में पड़ा मौत से लड़ रहा होता है। ●

रक्ताधान (blood transfusion) की क्रिया से पूर्व रक्त देने वाले और पाने वाले पात्रों के रक्त का परीक्षण आवश्यक है। चित्र में दिखाये अनुसार यदि दोनों का मिश्रण एकरस बन जाता है तब तो रक्ताधान किया जाएगा अन्यथा नहीं

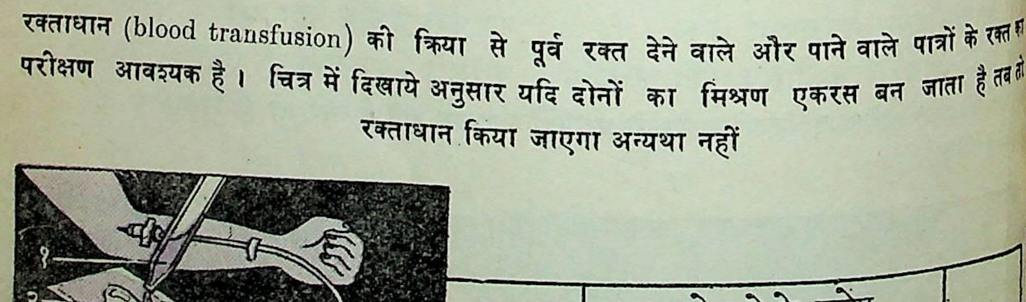

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

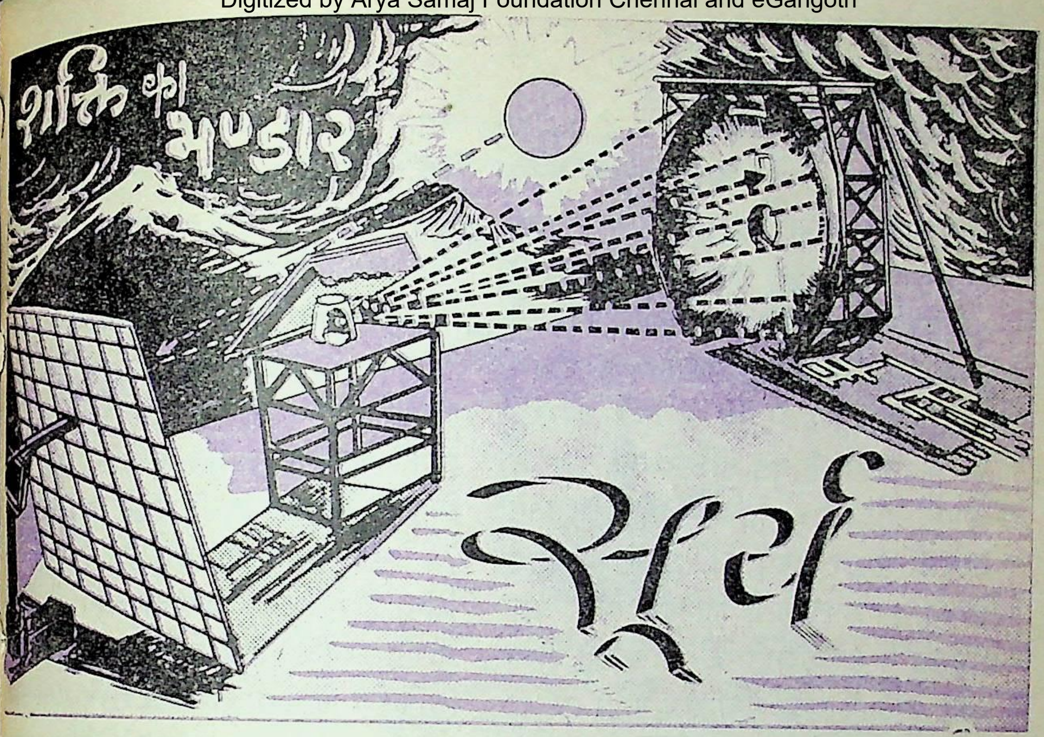

डा. अयोध्याप्रसाद शर्मा

सम्पूर्ण सौर जगत में प्रकाश तथा गर्मी सूर्य से आती है। सूर्य के ही कारण इस पृथ्वी पर जीवन सम्भव है। पृथ्वी से लगभग सवा नौ करोड़ मील दूर होने पर भी सूर्य का प्रकाश पृथ्वी तक सवा आठ मिनट में आ जाता है। सूर्य पृथ्वी की भाँति ही लगभग साढ़े आठ लाख मील के व्यास का बहुत बड़ा गोला है परन्तु वह पृथ्वी की तरह धातु, पत्थर या मिट्टी का बना हुआ नहीं है। सूर्य जलती हुई गैसों (मुख्यत: हाइड्रोजन) का बना हुआ एक गोला है। सूर्य की गर्मी का ताप लगभग दो करोड़ डिग्री सेंटीग्रेड है। इतने अधिक ताप के कारण हाइड्रोजन गैस के परमाणु लगातार विकीरित होते रहते हैं तथा हीलियम गैस के परमाणुओं में परिवर्तित हो जाते हैं। इस क्रिया में जो ऊर्जा उत्पन्न होती है उसी को हम सूर्य के प्रकाश और धूप (गर्मी) के रूप में प्राप्त करते रहते हैं।

सूर्य की महानता

सूर्य की महानता उसके विशाल आकार में नहीं बल्कि उससे सौर जगत को प्रदान की जाने वाली शक्ति में है। महानता का एक उदाहरण इस प्रकार दर्शाया जा सकता है कि यदि सूर्य से आने वाले विकिरण की मात्रा केवल एक प्रतिशत ही कम कर दी जाए तो सम्पूर्ण पृथ्वी पर औसत ताप एक डिग्री सेंटीग्रेड कम हो जाएगा। हमारी पृथ्वी पर ताप की यह कमी पृथ्वी के अधिकांश भागों पर ग्लेशियर तैयार करने तथा जन-समुदाय पर प्रभाव डालने के लिए काफी है।

घरों में कोयला तथा तेल जलाने के काम में लाया जाता है। यह सब सूर्य की ऊर्जा की देन है। सूर्य का विकिरण ही प्राचीन दबे हुए पदार्थों को रासायनिक ऊर्जा में बदल देता है। समस्त यातायात के साधन उस कोयले, तेल और पेट्रोल से ही चलते हैं जिनको सूर्य ऊर्जा ने पृथ्वी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गर्भ में हजारों वर्षों में तैयार करके इकट्ठा कर रखा है।

विद्युत ऊर्जा भी सूर्य ऊर्जा के ही कारण उत्पन्न होती है। विद्युत ऊर्जा उत्पन्न करने के दो ढंग हैं—कोयले द्वारा वाष्प-बायलर अथवा वाष्प-टरबाइन का उपयोग बिजली के डाइनमो चलाने के लिए किया जाता है या फिर पानी के झरनों से बिजली उत्पन्न की जाती है। पहले ढंग में जो कोयला काम में आता है वह तो सूर्य की ऊर्जा से ही तैयार होता है। रहा प्रश्न पानी के झरने से बिजली तैयार करने का, इसमें भी सूर्य ऊर्जा का यह उपयोग है कि जब पानी बहकर समुद्र में पहुँच जाता है तब उसको वाष्प बनाकर हवा में उड़ा देना सूर्य ऊर्जा का ही कार्य है। यही वाष्प ठण्डी होकर पहाड़ों पर हिम के रूप में जम जाती है और यही हिम पिघलकर पानी की नदियाँ बहा देते हैं जिनके झरनों से हमको विद्युत-शक्ति प्राप्त होती है।

कुछ समस्याएँ

हमारी पृथ्वी पर दैनिक कार्यों के लिए शक्ति प्रदान करने का मुख्य श्रेय कोयले, तेल तथा प्राकृतिक गैसों को है। अनुमान लगाया गया है कि संसार में प्राप्त कोयला, तेल अथवा गैस द्वारा उत्पन्न शक्ति सा तीन लाख अरब किलोवाट घण्टे की है तथा संसार में इन शक्तियों का दैनिक व्यय लगभग तीस हजार अरब किलोवाट घण्टे का है। गणना के इस आधार पर सूर्य द्वारा करोड़ों वर्षों में इकट्ठी की हुई सम्पूर्ण शक्ति लगभग सौ वर्ष के थोड़े से ही समय में पूर्णतया समाप्त हो जानी चाहिए।

भौतिक वैज्ञानिकों ने यह ज्ञात कर लिया है कि पृथ्वी पर यदि सूर्य की किरणें सीधी ऊर्ध्वाधर पड़ रही हों तब सूर्य द्वारा विकिरण की मात्रा १·३५ किलोवाट प्रति वर्गमीटर क्षेत्रफल होती है। यदि पृथ्वी के वायुमण्डल द्वारा इस विकिरण के कुछ भाग के शोषण का भी हिसाब लगा लिया जाए तब भी लगभग एक किलोवाट प्रति वर्गमीटर क्षेत्रफल की मात्रा का सूर्य विकिरण हमारी पृथ्वी पर आ जाता है। तुलना के लिए इस विकिरण को बीच के आकार के ए

सृष्टि का प्राणदाता सूर्य

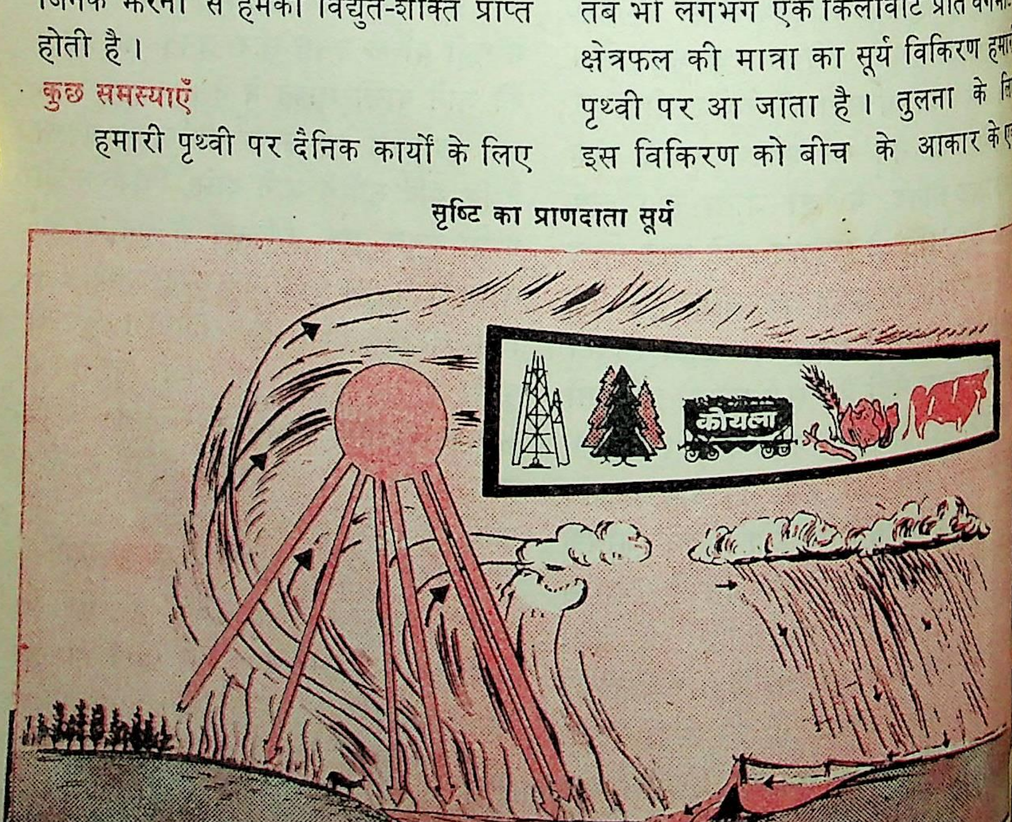

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी गर्म प्लेट अथवा विद्युत रेडियेटर के विकिरण के लगभग बराबर मान सकते हैं जो साधारणतया एक छोटे से कमरे को सर्दी में गर्म करने के लिए पर्याप्त हो। यदि यह भी गणना कर ली जाए कि सूर्य का विकिरण दिन भर में सुबह से शाम तक, विभिन्न कोणों पर आता है तब भी स्वच्छ आकाश वाले दिन में विषुवतीय प्रदेशों में किसी मकान की चौरस छत पर बारह घंटे में लगभग ६ किलोवाट घण्टे की सूर्य-ऊर्जा इकट्ठी की जा सकती है। यदि हम इस सूर्य-ऊर्जा को विद्युत शक्ति में परिणत करना चाहें और साथ में यह भी ध्यान रखें कि सूर्य-ऊर्जा का केवल ५० प्रतिशत भाग ही विद्युत ऊर्जा में परिणत होता है तब भी १० वर्गमीटर क्षेत्रफल के मकान की एक छत से प्रतिदिन १५० किलोवाट घण्टे विद्युत ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है। यह ऊर्जा एक ऐसे मकान में काम आनेवाली ऊर्जा से काफी अधिक है जो पूर्णतया विद्युत-युक्त हो तथा जिसमें विद्युत सम्बन्धी सभी साधन उपलब्ध हों। परन्तु इस ऊर्जा का मान भौगोलिक उच्च अक्षांशों के प्रदेशों में काफी कम होता जाएगा; क्योंकि वहाँ सूर्य की किरणें सीधी नहीं पड़तीं तथा सूर्य भी बादलों से काफी समय तक छिपा रहता है। यदि सम्पूर्ण पृथ्वी के लिए हिसाब लगाया जाए तो पन्द्रह करोड़ अरब किलोवाट घण्टे की सूर्य-ऊर्जा प्रति वर्ष पृथ्वी पर मिल सकती है। सूर्य द्वारा ऊर्जा की देन कितनी विशाल है, अब आपको अनुमान हो गया होगा।

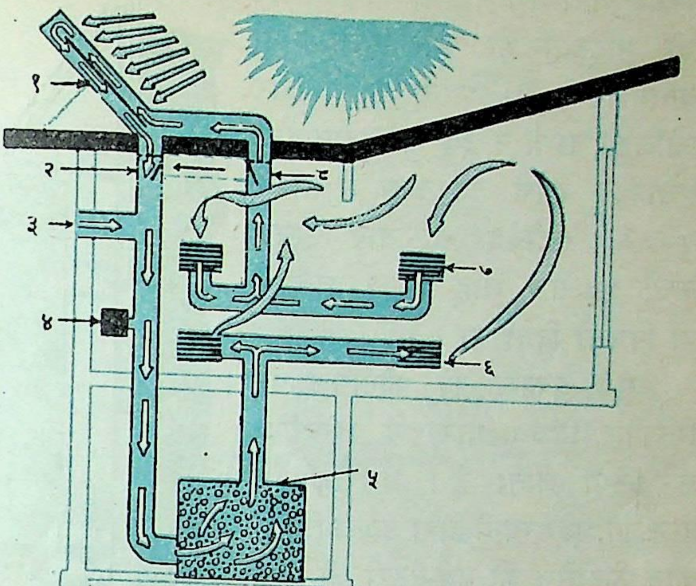

सूर्य द्वारा ताप-संग्रह—**सौर-ताप संग्राहक में भरी हुई वायु १. तप्त होकर २, ३. पम्प ४. द्वारा नीचे कंकड़ों के ढेर ५. में पहुँचायी जाती है। वहाँ ताप शोषित कर लिया जाता है। वहाँ से वायु प्रसारक गवाक्षों ६. से होकर कमरे को गर्म करती हुई निष्कासन गवाक्ष ७. से बाहर निकल जाती है। यदि सूर्य बादलों में छिप जाता है तो वाल्व ८. बन्द कर दिया जाता है**

सूर्य-ऊर्जा की उपयोगिता

प्रश्न उठता है कि यह सूर्य ऊर्जा इकट्ठी किस प्रकार की जाए तथा इसको किस प्रकार कार्य में लाया जाए? कुछ वर्ष पूर्व मिस्र, केलीफोर्निया तथा दक्षिणी अफ्रीका में परवलयाकार परावर्तक द्वारा सूर्य विकिरण इकट्ठा किया गया तथा उनको बहते हुए पानी के पाइपों पर डाला गया। इस पानी के द्वारा शोषित गर्मी को चीजें गर्म करने और ताप इंजन चलाने के काम में लाया गया है। हमारे देश में भी राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला में इस दिशा में काफी प्रगति हो चुकी है। वृत्ताकार अथवा परलवयाकार परावर्तकों द्वारा सूर्य विकिरण को केन्द्रित करके ऊर्जा का उपयोग रेफ्रिजरेटर चलाने, मकानों को गरम रखने तथा इंजन चलाने आदि में किया जा रहा है। रूस में सूर्य की ऊर्जा को केन्द्रित करके पाकशालाओं में भोजन तैयार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया जाता है। धातुओं को पिघलाने की भट्ठियाँ भी इसी सिद्धान्त पर बनायी गयी हैं। फ्रान्स के प्रोफेसर फोलिक्स दाम्बे ने ३३ फुट व्यास वाले वृत्ताकार दर्पण को काम में लाकर ५००० ° सेंटीग्रेड का ताप उत्पन्न करके ५० सेर लोहे को १ घण्टे में ही पिघला दिया था।

सूर्य प्रकाश को फोटोसेल पर गिराकर विद्युत धारा में परिवर्तित कर लिया जाता है। अमरीका में आर. सी. ए. कम्पनी द्वारा उत्पन्न सिलीकोन फोटोसेल को सूर्य-बैटरी की तरह से टेलीफोन लाइनों में काम में लाया जाता है। सिलीकोन सेल सूर्य की दस प्रतिशत ऊर्जा को सीधे ही विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित कर देते हैं। इन फोटो सेलों का आकार एक रेजर-ब्लेड के बराबर होता है। जिन दिनों आकाश में बादल छाये रहते हैं उन दिनों भी ये फोटोसेल अपना कार्य करते रहते हैं। इसी प्रकार किसी मकान की छत को फोटोसेलों से आच्छादित कर दिया जाए तो उससे काफी मात्रा में विद्युत धारा प्राप्त की जा सकती है।

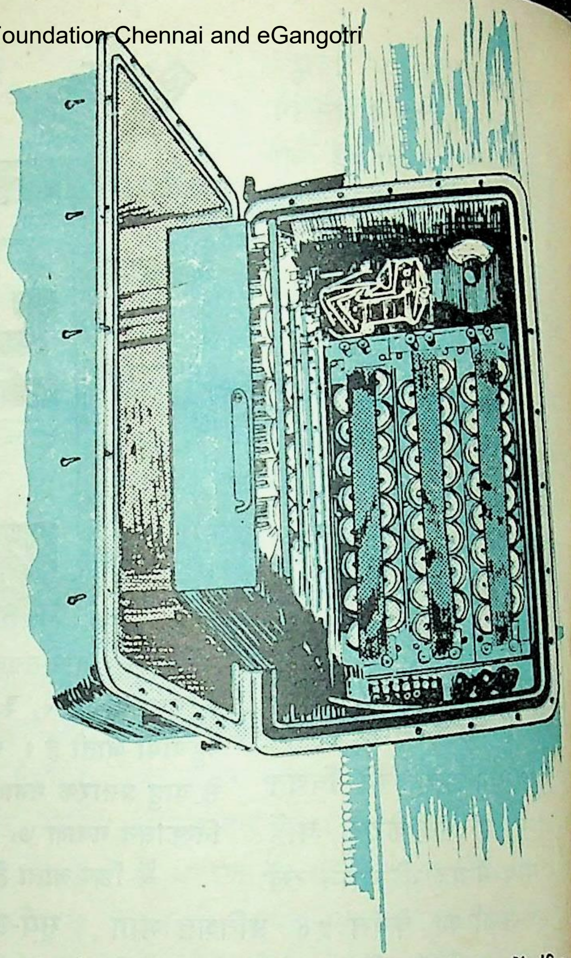

सौर-बैटरियों द्वारा उत्पादित विद्युत इस संग्राहक में संचित कर ली जाती है। जब सौर-बैटरियाँ काम न करती हों, अथवा अनियन्त्रित ऋतु में विद्युत-उत्पादन के अन्य साधन काम न करते हों तब इस संचित विद्युत से काम लिया जा सकता है

सिलीकोन सेल की रचना

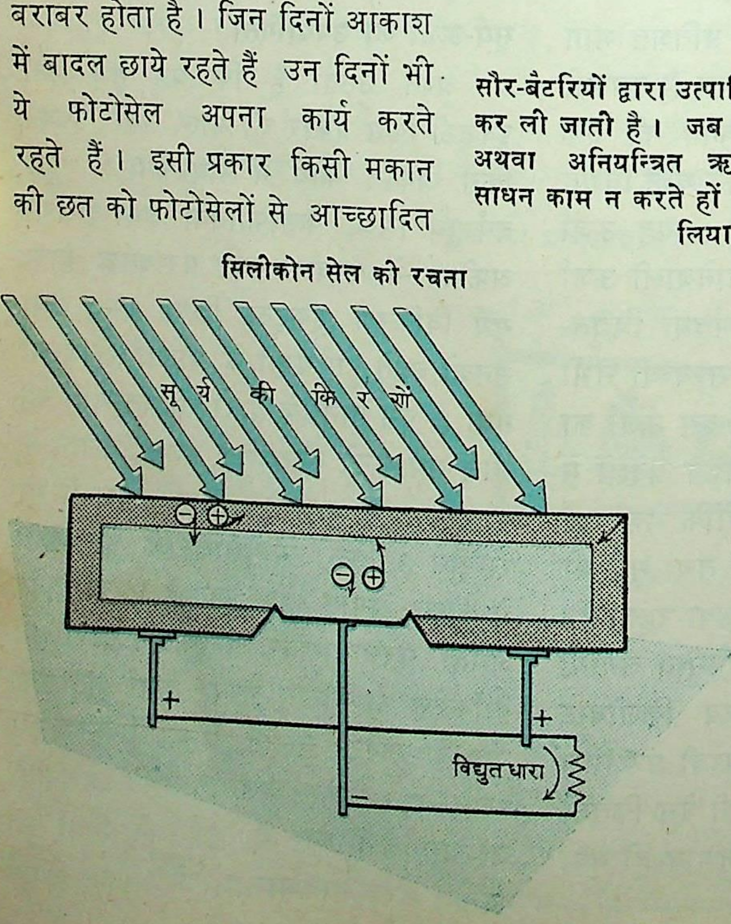

राकेट, अंतरिक्ष स्टेशन अथवा अंतरिक्ष-यान को चलाने के लिए तो शक्ति की काफी मात्रा अंतरिक्ष में ही सूर्य विकिरण से उत्पन्न की जाती है। अंतरिक्षयान को फोटोसेलों से सुसज्जित कर दिया जाता है जो सूर्य-ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा में परिणत करते रहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार सूर्य विकिरण को थर्मोकपिल पर डालकर विद्युत उत्पन्न की जा सकती है। परन्तु इसका उपयोग ऊँचे पैमाने पर नहीं किया जा सकता क्योंकि थर्मोकपिल की दक्षता अधिक से अधिक एक प्रतिशत ही की जा सकती है। यदि सहारा के रेगिस्तान को थर्मोकपिल से भर दिया जाए तब भी उनसे उत्पन्न विद्युत धारा बच्चों का खेल ही बनी रहेगी।

ऐसे भी प्रयत्न किये जा रहे हैं जिससे सूर्य-ऊर्जा को रेडियो, रेलगाड़ियाँ एवं जहाज आदि चलाने के काम में लाया जा सके। पृथ्वी की ओर सूर्य विकिरण की ऊर्जा इतनी अधिक है कि इसका पचास हजारवाँ भाग ही समस्त संसार की विद्युत-शक्ति की आवश्यकता को पूरा कर सकता है। परन्तु आधुनिक तकनीकी सम्भावनाओं अथवा भविष्य के उपायों पर विचार करने से यह ज्ञात होता है कि संसार की विद्युत-शक्ति की सम्पूर्ण आवश्यकता केवल सूर्य विकिरण से कभी पूरी नहीं हो सकती।

सूर्य-ऊर्जा ही परमाणु ऊर्जा है

जब सूर्य से उत्पन्न ऊर्जा के कारणों पर विचार किया गया तो बेथे तथा विजाकर नामक वैज्ञानिकों ने यह बतलाया कि सूर्य के गर्भ में परमाणु परिवर्तन होते रहते हैं जिनसे सूर्य की ऊर्जा उत्पन्न होती रहती है। वास्तव में सूर्य एक परमाणुशक्ति-घर है जो परमाणु परिवर्तनों तथा

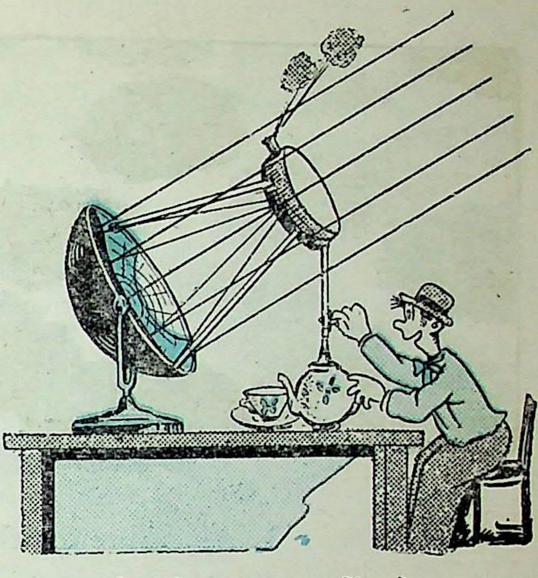

सूर्य-ऊर्जा का पाकशाला में प्रयोग

अन्तर-क्रियाओं के कारण परमाणु के नाभिकों में छिपी ऊर्जा को सदैव बाहर फेंकता रहता है। हाइड्रोजन बम का सिद्धान्त भी सूर्य की इसी परमाणु ऊर्जा की देन है।

इसमें सन्देह नहीं कि सूर्य की ऊर्जा एक परमाणु ऊर्जा है, परन्तु इसका विपरीत सत्य नहीं है अर्थात् परमाणु ऊर्जा कभी भी सूर्य से आने वाली ऊर्जा नहीं कही जा सकती। इस समय सूर्य की परमाणु ऊर्जा इतनी सहायक नहीं है कि हमारी पृथ्वी पर परमाणु ऊर्जा समस्त शक्तियों की समस्याओं का हल करने के लिए पर्याप्त हो सके। परन्तु भविष्य में सम्भव है कि सूर्य की ऊर्जा को अनेक प्रकार के उपायों द्वारा अधिक काम में लाया जा सके। ●

कीट-नाशन के लिए कीट-उत्पादन

सोवियत वैज्ञानिकों ने जंगली सेबों की फसलें नष्ट करने वाले कीटाणुओं के उन्मूलन के लिए संकर-कीटाणु उत्पन्न करने के सफल प्रयोग किये हैं। इससे पूर्व सेब के वृक्षों की शाखें उन हानिकारक कीटाणुओं के प्रभाव से ऐसी हो जाती थीं मानो वे आग में झुलस गयी हों। उन वैज्ञानिकों ने लगभग २० स्थानों से मँगवाये गये इस्नूमौन आगेनियास्पिस नामक कीटाणुओं को संकरक्रिया द्वारा उत्पादित करके उन्हें वृक्षों पर फैलने के लिए छोड़ दिया। उन संकर कीटाणुओं ने हानिकारक कीटाणुओं का बिलकुल सफाया करके सेबों की फसलों को पूर्ण सुरक्षित कर दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

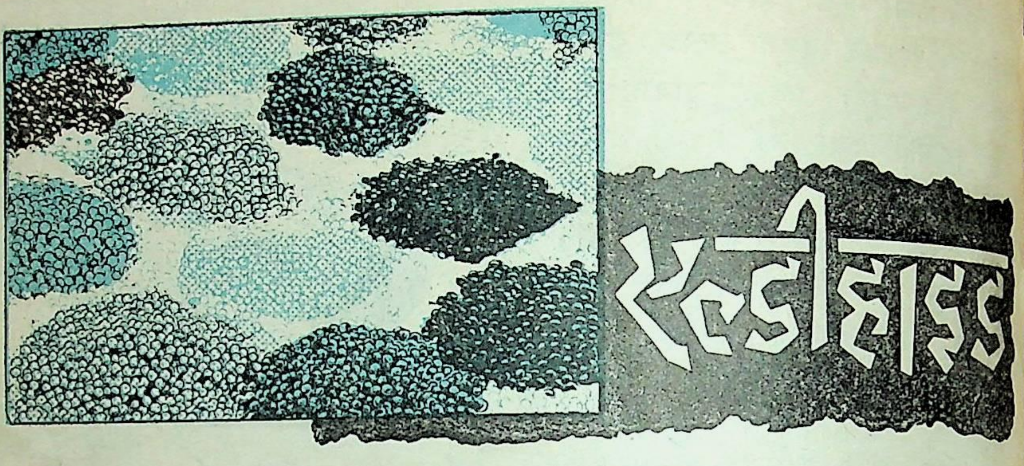

सत्यकुमार

आपका गला कभी अवश्य खराब हुआ होगा और आपको चूसने के लिए जो गोलियाँ (लोजेंज) दी गयी होंगी वे आपने अवश्य पसन्द की होंगी। यह गोलियाँ फार्मेलडिहाइड और लेक्टोज मिलाकर बनायी जाती हैं।

आपने प्लास्टिक अवश्य देखा होगा। प्लास्टिक कई प्रकार के होते हैं। उद्योग में अधिक प्रयुक्त होने वाला प्लास्टिक बेकेलाइट है। इसे सर्वप्रथम १९०५ में बेक्लोड ने बनाया था। यह फार्मेलडिहाइड और फीनोल का बहुलक (polymer) होता है।

फार्मेलडिहाइड एक प्रमुख एलडीहाइड है। एलडीहाइड परिवार का यह प्रथम सदस्य है। प्राथमिक एलकोहलों के आक्सीकरण से एलडीहाइड बनते हैं। किसी भी एलकोहल में से यदि हाइड्रोजन के दो परमाणु निकल जाएँ तो सम्बन्धित एलडीहाइड बन जाता है। कार्बनिक रसायन में इस प्रकार परिवारों की सजात श्रेणियाँ बनती हैं।

$$CH_3OH + O \rightarrow HCHO + H_2O$$
मेथिल एलकोहल फार्मेलडिहाइड

$$C_2H_5OH + O \rightarrow CH_3CHO + H_2O$$
एथिल एलकोहल ऐसीटेलडिहाइड

$$RCH_2OH \rightarrow RCHO + H_2O$$
प्राथमिक एलकोहल एलडीहाइड

—CHO एलडीहाइड वर्ग कहलाता है। एलडीहाइडों के गुण इसी वर्ग पर निर्भर करते हैं। आक्सीकृत किये जाने पर एलडीहाइड वसीय अम्लों में परिवर्तित हो जाते हैं। इन्हीं सम्बन्धित अम्लों के नाम से एलडीहाइडों का भी नाम संस्कार किया जाता है।

$$HCHO + O \rightarrow HCOOH$$
फार्मेलडिहाइड फार्मिक अम्ल

$$CH_3CHO + O \rightarrow CH_3COOH$$
ऐसीटेलडिहाइड ऐसीटिक अम्ल

फार्मिक अम्ल बनने के कारण नाम पड़ गया फार्मेलडिहाइड। हालाँकि अम्ल के स्वयं के नामकरण की भी बड़ी रोचक कथा है। सर्वप्रथम इसे चींटियों के स्रवण से प्राप्त किया गया था। लैटिन भाषा में 'फार्मिक' शब्द का अर्थ होता है चींटी। उसी से यह नाम चला आ रहा है। इसी प्रकार सिरके में पाये जाने के कारण दूसरे अम्ल का नाम पड़ गया ऐसीटिक अम्ल। इससे बना ऐसीटेलडिहाइड।

फार्मेलडिहाइड एक तीक्ष्ण गंध वाली गैस है। एक बार सूँघ लेने पर इस गैस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की गंध सहज भूली नहीं जा सकती। आँख, नाक और गले की झिल्लियों पर इसका प्रभाव पड़ता है। कसकर सूँघने पर आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है। उपयुक्त परिस्थितियों में फार्मेलडिहाइड का बहुलीकरण कर पैरा-फार्मेलडिहाइड में बदल लिया जाता है। यह ठोस पदार्थ है तथा इसमें तीक्ष्ण गंध नहीं होती। थोड़ा-सा गरम करने पर इसमें से फार्मेलडिहाइड गैस निकलने लगती है। पैरा-फार्मेलडिहाइड के रूप में एक स्थान से दूसरे पर भेजने में सुविधा रहती है।

फार्मेलडिहाइड की झिल्ली पर इतना तीक्ष्ण प्रभाव होने का कारण इसका प्रोटीन से सहज ही संयोग कर लेना है। प्रोटीन सभी जीवित ऊतक (living tissues) में होता है। संयोग के कारण ऊतक कड़ा हो जाता है और उसकी जीवकोशाएँ समाप्त हो जाती हैं। अन्य अणुजीव भी इसकी उपस्थिति में मर जाते हैं। अतः फार्मेल-डिहाइड का उपयोग ऊतक को सुरक्षित रखने में किया जा सकता है। प्रयोगशाला में काँच के बड़े-बड़े मरतबानों में आपने पशु-पक्षियों के शरीरों को किसी द्रव में सुरक्षित देखा होगा। यह द्रव फार्मेलिन कहलाता है। यह फार्मेलडिहाइड गैस का ४०% विलयन होता है। ठटरियाँ इसमें गलती-सड़ती नहीं तथा ऊतक बहुत कठोर हो जाता है। कठोर हो जाने के कारण इसको उठाने, धरने तथा चीड़-फाड़ करने में आसानी रहती है।

फार्मेलिन में ही जेलीफिश सुरक्षित रखी जा सकती है

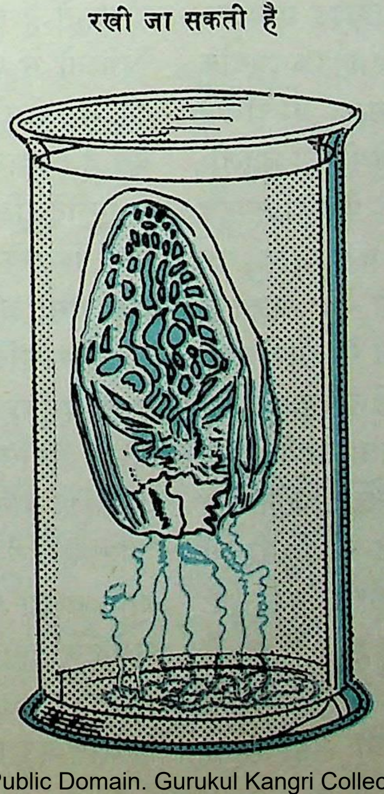

फार्मेलडिहाइड और फीनोल मिलकर 'रेजिन' बनाते हैं। रेजिन में कुछ अन्य पदार्थ मिलाकर प्लास्टिक बना लेते हैं। इनके बहुलक द्वारा बेकेलाइट बनता है।

गोंद, सरेस, जिलेटिन इत्यादि भी फार्मेलडिहाइड द्वारा कठोर बना दिये जाते हैं। जल में इनकी विलेयता भी समाप्त हो जाती है। अतः चमड़ा उद्योग में इसका पर्याप्त इस्तेमाल होता है।

यूरिया और फार्मेलडिहाइड मिलकर भी प्लास्टिक उद्योग में परतों को चिपकाने के काम आते हैं। रंग उद्योग में भी फार्मेलडिहाइड प्रयुक्त होता है।

अमोनिया के साथ फार्मेलडिहाइड का एक यौगिक बनता है यूरोट्रोपिन। पहले यह मूत्र सम्बन्धी रोगों के उपचार में काम आता था। गठिया के लिए भी यह श्रेष्ठ ओषधि है। रबर उद्योग में भी यूरोट्रोपिन वल्कनीकरण (vulcanisation) के काम आता है। इसके नाइट्रीकरण द्वारा 'साइक्लोनाइट' बनता है। यह टी. एन. टी. से ड्योढ़ी शक्ति का विस्फोटक है।

फार्मेलडिहाइड के दो हाइड्रोजन परमाणुओं के स्थान पर क्लोरीन के दो परमाणु आ जाएँ तो अत्यन्त विषैली गैस 'फोसजीन' ($COCl_2$) बनती है। एक बार कसकर खींच लेने पर मृत्यु निश्चित है। प्रथम महायुद्ध में इसका प्रयोग हुआ था।

हम ऊपर कह चुके हैं कि —CHO एलडीहाइड वर्ग हुआ, केवल फार्मेल-डिहाइड में यह वर्ग एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

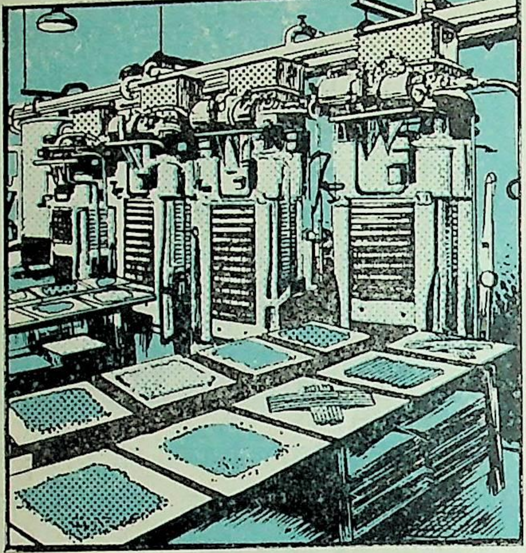

विभिन्न रंगों के इन केसीन पाउडरों की शीट बनाने के पश्चात् उन पर फार्मेलिन की प्रक्रिया कराकर उन्हें प्लास्टिक में परिवर्तित कर लिया जाएगा

हाइड्रोजन परमाणु से सम्बन्धित रहता है। अन्य एलडीहाइड में इस वर्ग का कार्बन परमाणु दूसरे कार्बन परमाणु से सम्बन्धित रहता है। इस प्रकार CH_2 के अन्तर से इस सजात श्रेणी के सदस्य बढ़ते चलते हैं।

दूसरा महत्त्वपूर्ण एलडीहाइड ऐसीटेलडिहाइड है। यह द्रव है पर इसका क्वथनांक बहुत कम, २०° से. है। सान्द्र अम्लों की उपस्थिति में इसके तीन अणुओं का बहुलीकरण होकर चक्रीय यौगिक पैरालडिहाइड बनता है। पैरालडिहाइड बन जाने पर इसका क्वथनांक १२२° से. हो जाता है और इस रूप में इसे सरलता से इधर-उधर भेजा जा सकता है। ऐसीटेलडिहाइड का क्वथनांक बहुत कम है। अतः उसके वाष्प रूप में परिवर्तित होकर निकल जाने का डर रहता है। पैरालडिहाइड की किसी भी दुर्बल अम्ल से प्रक्रिया करने पर पुनः ऐसीटेलडिहाइड बन जाता है।

ऐसीटेलडिहाइड हमारे शरीर में भी बनता रहता है, किन्तु स्थायी नहीं रहता और बनते ही अन्य पदार्थों में परिवर्तित हो जाता है। उपापचयन (metabolism) में यह माध्यमिक यौगिक होता है। प्रायः शरीर में एथिल एलकोहल ऐसीटेलडिहाइड में परिवर्तित होता रहता है। ऐसीटेलडिहाइड स्थायी नहीं होता अन्यथा यह हानिकारक पदार्थ है। शरीर में प्रायः एथिल एलकोहल ही पहुँचता है। यदि अन्य एलकोहल पहुँचते तो उससे बने एलडीहाइड अत्यन्त हानिकारक होते।

प्रत्येक मनुष्य का शारीरिक रसायन भिन्न-भिन्न होता है। कुछ लोगों के शरीर में ऐसीटेलडिहाइड जल्दी परिवर्तित होता है, अन्य लोगों के शरीर में देर लगती है। जिन लोगों के शरीर में यह कुछ देर स्थायी रहता है उन पर शराब पीने से कुप्रभाव पड़ता है। शराब में एथिल एलकोहल होता है। वह ऐसीटेलडिहाइड में आक्सीकृत हो जाता है, ऐसीटेलडिहाइड उनके शरीर में पहले से ही उपस्थित है अतः वे शराब बर्दाश्त ही नहीं कर सकते। परेशान हो जाते हैं। शराब की आदत छुड़ाने की विधियों में एक प्रयोग यह भी है। डाक्टर की राय से रोगी (शराबी) को ऐसी दवाइयाँ देते हैं कि शराब का घूँट पीते ही उसके शरीर में ऐसीटेलडिहाइड पर्याप्त बन जाता है और मजा किरकिरा हो जाता है। दो-चार बार जहाँ ऐसा अनुभव हुआ कि उसने तौबा की।

पैरालडिहाइड शमक के रूप में डाक्टरों द्वारा प्रयोग किया जाता है। पानी के साथ थोड़ा पैरालडिहाइड दे दिया जाता है। १०-१५ मिनट पश्चात् रोगी आराम से सो जाता है। पैरालडिहाइड से भी उत्तम निद्रा लाने वाला पदार्थ क्लोरल हाइड्रेट है। यदि ऐसीटेलडिहाइड के मेथिल वर्ग के तीन हाइड्रोजन परमाणुओं के स्थान पर क्लोरीन के तीन परमाणु आ जाएँ तो क्लोरल बनता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। जल में घुलने पर यह जल का एक अणु लेकर क्लोरल हाइड्रेट बन जाता है। अत्यधिक आवश्यकता होने पर ही इन शमक पदार्थों का प्रयोग करना चाहिए। इनका स्वाद भी बुरा होता है तथा ये पेट में गड़बड़ी पैदा करते हैं। इनकी आदत पड़ जाने पर बिना दवा के नींद ही नहीं आती। मात्रा से अधिक खुराक ले लेने पर मृत्यु भी हो सकती है।

फार्मेलडिहाइड और ऐसीटेलडिहाइड ही प्रमुख एलडीहाइड हैं। वैसे अनेक एलडीहाइडों में सुगन्ध होती है और कृत्रिम सुगन्ध के रूप में उनका उपयोग होता है। सिट्राल दस कार्बन परमाणु वाला एलडीहाइड होता है। इसमें नीबू की बड़ी तीव्र गंध होती है। नीबू के शर्बत आदि में इसी का प्रयोग होता है।

बेंजिलडिहाइड में एलडीहाइड वर्ग बेंजीन चक्र से सम्बन्धित होता है। इसमें बादामों की सी तेज गंध होती है। बादाम की सुगन्ध देने के लिए यह बहुत प्रयुक्त होता है।

बिस्कुट आदि खाद्य-पदार्थों में आपने विशिष्ट गंध सूँघी होगी। यह यौगिक वेनिलीन होता है। वेनीला नाम से इसका बहुत अधिक प्रचलन है। इसमें एलडीहाइड वर्ग के अतिरिक्त हाइड्राकिल और ईथर वर्ग भी होता है।

इन प्रमुख गंधों के अतिरिक्त दालचीनी इत्यादि की गंध विभिन्न एलडीहाइडों में पायी जाती है। एलडीहाइड पानी में नहीं घुलते। यह एथिल एलकोहल में विलेय है। इसीलिए इत्र आदि में एलकोहल होता है।

कई छोटे अणु यदि संयोग करके एक बड़ा अणु बना लें जिसका अणुभार उस छोटे अणु का ही कई गुना हो तो वह यौगिक बहुलक कहलाता है। प्रकृति ने पदार्थों के इस गुण का बहुत सुन्दर उपयोग किया है। सूर्य के प्रकाश में, पौधों में क्लोरोफिल की उपस्थिति में, कार्बन डाइ-आक्साइड और जल मिलकर पहले फार्मेल-डिहाइड बनाते हैं। इसके अनेक अणु मिलकर नाना प्रकार की शर्करा बनाते हैं जिनसे पौधे को अपनी वृद्धि के लिए स्टार्च, सेल्यु-लोज इत्यादि अनेक पदार्थ स्वतः प्राप्त होते रहते हैं।

पौधे कार्बन डाइआक्साइड लेते हैं और आक्सीजन देते हैं। पर वे कार्बन डाइ-आक्साइड को परिवर्तित रूप फार्मेलडिहाइड में लेते हैं। इस क्रिया के कारण ही संसार के समस्त प्राणियों के द्वारा आक्सीजन लेने और कार्बन डाइआक्साइड निकालने पर भी वायुमण्डल में न तो आक्सीजन की कमी होती है और न ही कार्बन डाइआक्साइड की अधिकता। ●

टैंकचालक के लिए नया सिरस्त्राण

युद्धक्षेत्र पर टैंकचालकों को अब तक भारी, स्टील के सिरस्त्राण पहनने पड़ते थे। उनके स्थान पर अब जो नये नमूने बनाये गये हैं उनमें अनेक विशेषताएँ हैं। नाइलान का बना यह सिरस्त्राण वजन में केवल तीन पौण्ड है और गोलियों की बौछारें तथा गोलों के टुकड़ों से उसी क्षमतापूर्वक रक्षा करता है जैसे स्टील-निर्मित करता है। हर प्रकार की चोटें और धक्के सहने के लिए इसमें पैड भी लगे रहते हैं। इनमें नवीनता यह है कि वायरलेस-संवादों के प्रसारण तथा ग्रहण करने के लिए एक छोटा माइक्रोफोन, उसका स्विच तथा अन्य उपकरण भी रहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

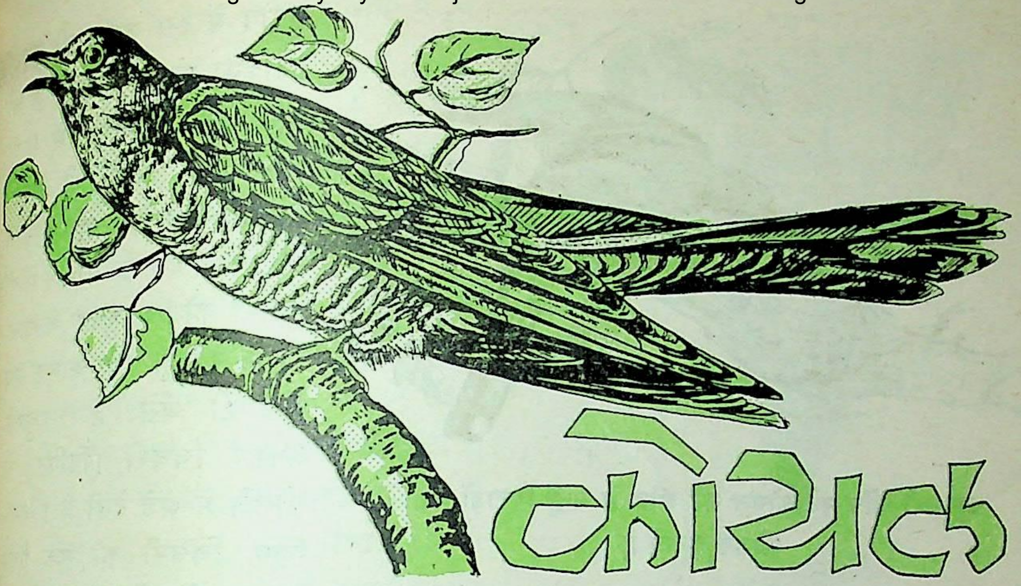

कोयल

कुँवर सुरेशसिंह

कोयल किस प्रकार अपने अंडों को दूसरे पक्षियों के घोंसले में सेने के लिए छोड़ आती है और घोंसले से कैसे उसके बच्चे उन्हीं पक्षियों द्वारा पाले-पोसे जाते हैं, इसके बारे में थोड़ा-बहुत तो हम सब जानते ही हैं लेकिन इसका पूरा विवरण इतना रोचक है कि यहाँ विस्तार से देना ही ठीक होगा। कोयल की जाति की कई चिड़ियाँ हमारे देश में पायी जाती हैं जो दूसरों के घोंसलों में अपने अंडे दे आती हैं। उनमें कुछ खास के नाम यहाँ दिये जाते हैं : कुक्कू (यूरोपीय कोयल), काफलपाको (भारतीय कोयल), पपीहा (हाक कुक्कू), चातक (पाइड क्रेस्टेड कुक्कू) और कोयल। इन सब पक्षियों ने न जाने कितने समय से अपने अंडों को सेना छोड़ दिया है और अब वे दूसरे पक्षियों के घोंसलों में अपना अंडा इसलिए चालाकी से रख आती हैं कि उन्हें दूसरे पक्षी अपना अंडा समझकर सेने लगें और अंडा फूटने पर उनके बच्चों का उन्हीं के द्वारा पालन-पोषण हो। इन पक्षियों को इस काम में प्रकृति की ओर से भी सहायता मिलती है।

कोयल के इस रहस्योद्घाटन पर विशेषज्ञों ने पचीसों वर्ष लगा दिये तब कहीं जाकर उन्हें कोयल की सच्ची कहानी का पता चला। पहले लोगों का विश्वास था कि कोयल अपने अंडे कहीं जमीन पर देती है और वहाँ से उन्हें एक एक करके अपनी चोंच से उठाकर दूसरे पक्षियों के घोंसलों में रख आती है। इस विश्वास का मुख्य कारण यह था कि अंडा देने का समय आने पर हमें अक्सर कोयल अपनी चोंच में अंडा लिए हुए उड़ती दिखाई पड़ती है। लेकिन थोड़े ही दिन हुए श्री एडगर चान्स ने कोयल के इस रहस्य का पता लगा लिया कि कोयल किस प्रकार अपने अंडे दूसरों के घोंसले में रख आती है।

श्री एडगर चान्स ने कई वर्ष तक कोयल का निरीक्षण किया और कोयल के अण्डा देने की पूरी प्रक्रिया को सिनेमा के कैमरे से चित्र खींचकर यह सिद्ध कर दिया कि किस प्रकार कोयल के अंडे दूसरे पक्षियों के घोंसले में पहुँचते हैं। उनके इस कार्य से पूर्व मत का पूर्ण रूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनहरी चोंच की कोयल बड़े शौक से नन्हें गिराड़ों का भोजन करती है

से खण्डन हो गया और अब सब लोग कोयल के रहस्य को जानने लगे हैं। यदि श्री एडगर चान्स सिनेमा फिल्म का सहारा न लेते तो पुराना मत मानने वाले विद्वान इसे कभी स्वीकार न करते कि कोयल अपने अंडे बाहर देकर चोंच से दूसरे पक्षियों के घोंसले में नहीं रखती, क्योंकि उनके पास अपने मत के समर्थन के लिए और भी कई सुन्दर दलीलें थीं। पुराने मत वाले कहते थे कि कोयल को इतना समय नहीं मिलता कि वह निश्चिन्त होकर दूसरे के घोंसले में अंडा दे। इससे यही जान पड़ता है कि वह अपने अंडे कहीं बाहर देती है और वहाँ से एक एक अंडे को उठाकर चालाकी से दूसरे के घोंसले में रख देती है। दूसरा प्रमाण जो वे लोग देते थे वह यह था कि कोयल के अंडे कुछ ऐसे घोंसले में पाये जाते हैं जो बहुत छोटे और गोल गुम्बद के आकार के होते हैं और जिनमें घुसना कोयल के लिए किसी प्रकार सम्भव नहीं है। अतः कोयल इन घोंसलों में केवल अपनी चोंच डालकर ही अंडे रख सकती है।

श्री एडगर चान्स ने चित्र लेने के लिए कुक्कू (यूरोपीय कोयल) को चुना, क्योंकि कोयल तो केवल भारत की चिड़िया है। यूरोप में इस जाति की दूसरी चिड़िया कुक्कू कहलाती है जो वहाँ काफी संख्या में पायी जाती है। दोनों की आदतों में अधिक अन्तर नहीं होता। फिर अंडा देने के मामले में तो हमारी कोयल, कुक्कू, काफलपाको, पपीहा तथा चातक सब एक ही जैसे हैं। कुक्कू अक्सर चिचरी (पिपिट) के घोंसले में अंडे देती है। इसलिए चिचरी का एक ऐसा घोंसला चुना गया जो कँटीली झाड़ियों के बीच में था। उस झाड़ी को और भी काँटों से अच्छी तरह रूँध दिया गया जिससे वहाँ तक पहुँचने के लिए सिर्फ एक पतला सूराख रह जाए और जिसमें कुक्कू की चोंच भर जा सके तथा खुद न जा सके। समय आने पर मादा कुक्कू झाड़ी के पास पहुँच गयी। उसने झाड़ी में घुसने की कोशिश की लेकिन उसमें घुसना सम्भव नहीं था। घोंसले के सामने खाली जमीन पड़ी थी, जिस पर कुक्कू अंडे दे सकती थी लेकिन उसने वहाँ अंडा नहीं दिया, बल्कि झाड़ी के ऊपर बैठ कर उसमें घुसने की कोशिश करने लगी। धीरे-धीरे वह काँटों को इधर-उधर दबा कर चिचरी के घोंसले तक पहुँच ही गयी। उसके पर उखड़ गये। वह घायल हो गयी लेकिन उसने तब तक दम नहीं लिया जब तक वह घोंसले तक नहीं पहुँची। वहाँ पहुँचकर उसनें अपनी चोंच में चिचरी का एक अंडा उठा लिया और उसके स्थान पर स्वयं एक अंडा देकर झाड़ी के बाहर निकल आयी और चिचरी के अंडे को एक डाल पर बैठकर चट कर गयी। इससे यह स्पष्ट हो गया कि कुक्कू अपने अंडे जमीन पर न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देकर सीधे दूसरे पक्षियों के घोंसले में ही देती है।

कोयल अथवा कुक्कू के बारे में और जो बातें निरीक्षण से ज्ञात हुई हैं वे इस प्रकार हैं—कोयल और उसकी जाति के अन्य पक्षी कौए, चरखी, चिचरी, पादनों आदि के घोंसले में अपने अंडे देते हैं। ये अंडे एक ही दिन में नहीं दिये जाते बल्कि इन्हें कोयल एक एक दिन का अन्तर देकर देती है। उसे जिस दिन अंडा देना होता है वह किसी पेड़ की डाल पर उसी तरह घंटों बैठी रहती है जिस प्रकार अन्य चिड़ियाँ अंडा देने से कुछ समय पहले चुपचाप बैठ जाती हैं। फिर अंडा देने का समय आने पर वह हवा में उड़कर उस घोंसले पर पहुँच जाती है जिसे वह पहले से ही चुने रहती है। वहाँ पहुँचकर वह अपना समय नष्ट नहीं करती और फौरन ही एक अंडे को अपनी चोंच में उठाकर उसके स्थान पर खुद अंडा देकर उड़ जाती है। इस सबमें उसे मुश्किल से १० सेकण्ड का समय लगता है। कोयल अंडा लेकर किसी डाल पर जा बैठती है और वहीं उसे निगल जाती है। ४-६ घंटे के कठिन परिश्रम के बाद उसे यहीं पहला भोजन मिलता है।

अपना अंडा दूसरे के घोंसले में देकर कोयल उसे भूल नहीं जाती बल्कि समय समय पर उसे देखती रहती है और यदि वहाँ अपने अंडे को नहीं पाती तो फिर वहीं अपना दूसरा अंडा दे आती है। इस प्रकार तब तक बार-बार अंडे देती रहती है जब तक वह उन्हें सुरक्षित नहीं देख लेती। वैसे तो कोयल साधारणतया ४-५ अंडे देती है लेकिन इस प्रकार अंडे नष्ट हो जाने पर उसे २५ अंडे तक देते देखा गया है।

लगभग १३ दिन में कोयल का अंडा फूट जाता है और कोयल का भद्दा-सा

चिन्ता और भय का हृदय पर गहरा प्रभाव होता है

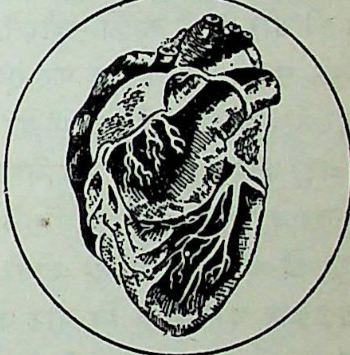

साफ़ी

पाचन-क्रिया को ठीक करती है, खून को साफ़ करती है और ताजा खून पैदा करके चेहरे पर ताज़गी लाती है।

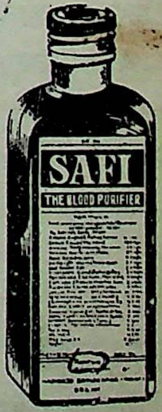

हमदर्द देहली-कानपुर-पटना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बच्चा निकल आता है। शुरू में उसकी आँखें नहीं खुली रहतीं और वह घोंसले के बीच में लोथड़े के समान पड़ा रहता है। पहले दिन तो वह चुपचाप पड़ा रहता है लेकिन दूसरे दिन शाम को या तीसरे दिन सवेरे तक उसमें इतनी शक्ति आ जाती है कि वह घोंसले के दूसरे बच्चों और अंडों के बाहर फेंकने में ही अपनी भलाई देखता है और वह उन्हें घोंसले के बाहर फेंकने का काम शुरू कर देता है। इस काम में उसे कठिनाई जरूर पड़ती है लेकिन इसमें उसे प्रकृति की ओर से भी काफी सहायता मिलती है। इस समय उसकी पीठ पर एक प्रकार का गढ़ा-सा हो जाता है जिसमें वह कोशिश करके अंडों और बच्चों को रख लेता है और उसके बाद वह अपने पंजों से घोंसले के दोनों किनारों को पकड़कर अपनी दोनों भुजाओं को इस प्रकार चलाता है कि पीठ की मांस-पेशियाँ मथनी की तरह चलती हैं और पीठ पर के गढ़े में जो अंडा या बच्चा रहता है वह उछलकर घोंसले के बाहर जा गिरता है। इसी प्रकार वह एक-एक करके सब अंडों और बच्चों को बाहर निकाल फेंकता है और घोंसले में उसका एकछत्र राज्य स्थापित हो जाता है।

अब कोयल का यह बच्चा घोंसले में सौतेले माँ-बाप के लाये हुए भोजन को अकेले ही खा-खाकर खूब मोटा होता जाता है और धीरे-धीरे उसका शरीर मुलायम पंखों से ढक जाता है। उसका शरीर घोंसले से बड़ा हो जाता है और वह बड़ी मुश्किल से उस पर किसी प्रकार अपने को सम्हाले रहता है। कुछ दिन बाद उसके उड़ने की बारी आती है और वह थोड़ी दूर उड़कर किसी डाल पर बैठ बड़े मीठे स्वर में बोलता है। उसकी बोली सुनकर आसपास के पक्षी जो इधर-उधर से अपने बच्चों के लिए खाना लेकर गुजरते हैं उसकी खुली हुई चोंच और फैले हुए मुँह को देखकर उसके मुँह में खाना रख देते हैं। इस प्रकार यह परजीवी-पक्षी दूसरों के भोजन से अपना पेट भरकर बड़ा हो जाता है। और अन्त में एक दिन पालन-पोषण करने वाले उसे छोड़कर उड़ जाते हैं।

ऐसी हालत में उसकी दशा शोचनीय हो जाती है। उसे बैठे-बैठे कीड़े-मकोड़ों की नरम जोराइयाँ तथा इसी प्रकार के अन्य पदार्थ मिलने बन्द हो जाते हैं। वह मजबूरन शाकाहारी हो जाता है और नरम कोपलों और पत्तियों से अपना पेट भरने लगता है। लेकिन उसे इस प्रकार थोड़े ही दिन बिताने पड़ते हैं और पुनः वह अपने असली भोजन कीड़े-मकोड़े आदि से अपना पेट भरना शुरू कर देता है। इस प्रकार कोयल का रहस्यमय जीवन एक साधारण पक्षी की तरह बीतने लगता है।

बाल-पक्षाघात निरोधक टिकियाँ

द्वितीय विश्वयुद्ध से पहले सोवियत संघ में बाल-पक्षाघात बहुत ही कम-परिचित रोग था। युद्ध के पश्चात् यह महामारी के रूप में फैलता चला। सोवियत वैज्ञानिक और चिकित्सक इससे अति चिन्तित हो उठे और वर्षों के परिश्रम तथा प्रयोगों के अनन्तर ऐसी मीठी टिकियाँ तैयार की हैं जिनमें पक्षाघात-निरोधक जीवित टीके की कुछ बूँदें भी रहती हैं। ये टिकियाँ पूर्णतः हानिरहित तथा प्रभावयुक्त सिद्ध हुई हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पौधों का कृत्रिम उत्पादन

प्रेमानन्द चन्दोला

हरएक सजीव पदार्थ की यह विशेषता है कि वह अपनी जाति बढ़ाने के लिए पुनरुत्पादन या जनन करता है अर्थात् अपने ही अनुरूप अन्य छोटे और वृद्धि कर सकने वाले जीवों के उत्पादन की क्षमता रखता है। इस क्रिया को सम्पन्न बनाने में उसे प्रकृति योग देती है। इसलिए यह उत्पादन या जनन जिसे हम नित्य-प्रति अपने जीवन में देखते हैं, प्राकृतिक उत्पादन हुआ, परन्तु अब स्वयं मनुष्य भी अपनी इच्छानुसार पौधों का उत्पादन करने लगा है। मनुष्य द्वारा सम्पन्न होने वाली 'पादप-उत्पादन' की इस विधि को ही पौधों के कृत्रिम उत्पादन के नाम से पुकारा जाता है। कृत्रिम उत्पादन की कई रीतियाँ हैं, जिन पर आये दिन निरन्तर प्रयोग चल रहे हैं। मनुष्य ने इस विधि को इसलिए अपनाया कि वह स्वयं पौधों को छाँटकर, उन पर इच्छानुसार नियन्त्रण रखकर उनमें और उनकी अगली पीढ़ियों में परिवर्तन तथा उचित सुधार कर सके।

कृत्रिम उत्पादन पौधों के वर्धी (vegitative) तथा पुष्पी (लैंगिक) दोनों भागों से सम्पन्न होता है। वर्धी भागों अर्थात् जड़, तने, शाखा, कलियों, आँखों, गाँठों, पत्तियों, टुकड़ों आदि का मिट्टी या किसी पौधे में रोपण करके नया पौधा उत्पन्न करने को ही 'कृत्रिम वर्धी उत्पादन' कहते हैं। इसी तरह इच्छानुसार किसी मनचाहे नर फूल का पराग-केसर किसी मनचाहे स्त्री फूल के स्त्री-केसर पर गिराकर नये पौधे उत्पन्न करने की विधि को 'कृत्रिम लैंगिक उत्पादन' कहते हैं।

इसकी आवश्यकता इसलिए उत्पन्न हुई क्योंकि मनुष्य की इच्छा हुई कि मन पसन्द पौधे उगाये जाएँ, इच्छित समय पर बेमौसम पौधे उगाये जाएँ, एक पौधे की शुद्धता और गुण दूसरे पौधे में भी वैसे के वैसे ही बने रहें, एवं रोग-अवरोधी, रोगमुक्त और स्वस्थ पौधे उत्पन्न हों। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखते हुए उसने अपने प्रयत्न आरम्भ कर दिये।

कलम या पैबन्द लगाना

इस विधि में एक पौधे के किसी भाग को काटकर उसी जाति के दूसरे पौधे में इस तरह लगा दिया जाता है कि उसको बराबर पोषण मिलता रहे। इसमें काटकर लगाये गये भाग को कलम (sion) और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

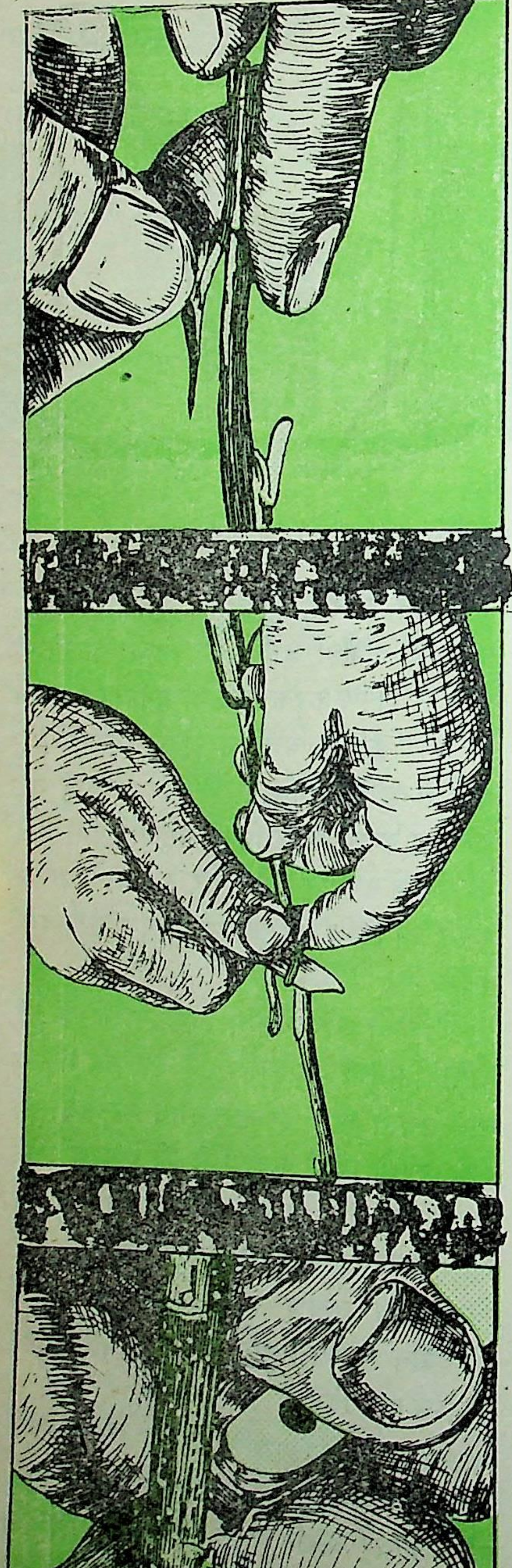

जिस पौधे पर लगाते हैं उसे स्कंध (stalk) कहते हैं। इस रीति में सरलता से नाशपाती या सेब पर या निकट सम्बन्धी पौधे पर अच्छे नाशपाती या सेब की कलम लगायी जाती है। कलम का अच्छी तरह से परिवर्धन होने के बाद स्कंध की अन्य टहनियों या भागों को काट देते हैं और तब वह कलम एक नये पौधे के रूप में परिवर्धित हो जाती हैं। वैसे तो अब कलम कई प्रकार से लगायी जाती है और उनमें बहुत कुछ सुधार भी हो गये हैं परन्तु सामान्य सिद्धान्त सबमें बिलकुल एक ही है।

वनस्पति-वैज्ञानिकों ने कलम लगाकर कई ऐसे विचित्र पौधे तैयार किये हैं जिनमें कलम दूसरी जाति के पौधे की थी और लगाया गया वह भिन्न जाति के दूसरे पौधे पर। उदाहरण के लिए उन्होंने आलू के पौधे पर टमाटर की कलम लगायी और आश्चर्य की बात कि उनका यह प्रयोग बिलकुल सफल रहा। उस पौधे में आलू भी लगे और टमाटर भी। उस विचित्र पौधे का नाम उन्होंने 'पौमैटो' (पोटैटो-टोमैटो) रखा।

कलम लगाने की एक दूसरी विधि को भेंट कलम लगाना कहते हैं। इसमें एक बड़े पेड़ की टहनी तथा गमले के पौधे के तने को छीलकर और एक साथ जोड़कर चारों ओर से मिट्टी, गोबर, रुई आदि से लपेटकर बाँध देते हैं। जब दोनों के ऊतक वृद्धि करके परस्पर मिल जाते हैं तो बड़े पेड़ की टहनी को नीचे से काटकर गमले को अलग कर देते हैं और इस तरह कम समय में नया पौधा तैमार हो जाता है।

←कली का स्थानान्तरण—(ऊपर से नीचे) कली को पृथक करने के लिए टहनी पर सावधानीपूर्वक काट लगाया जा रहा है; कली को कोमलता से उठाया जा रहा है; जिस दूसरी टहनी पर कली बिठाया जाएगा उस पर स्थान बनाया जा रहा है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...श्मा चढ़ाना

इसमें स्कंध के तने में कली वाले स्थान ...र एक-डेढ़ इंच लम्बी काट दे दी जाती है और मनचाहे अच्छे पौधे से उसी आकार की कली या चश्मा लेकर ठीक उस कटे स्थान पर फिट कर दिया जाता है। कली ...गाने के बाद उस स्थान को बाँध दिया जाता है जिससे कली या चश्मा स्कंध के ...तक से बिलकुल मिल जाए। कली के परि-वर्धित हो जाने पर बंधन खोल दिया जाता है और स्कंध की शेष टहनियाँ भी काट दी जाती हैं। फिर यही नन्हीं कली परिवर्धित होकर नया बड़ा पौधा बना देती है। इस विधि का प्रयोग गुलाब में काफी किया जाता है। बाग-बगीचों से शौक रखने वाले इस विधि से फायदा उठाकर एक ही गुलाब के पौधे में कई गुलाबों की कलियाँ बिठाकर लाल, पीले, गुलाबी रंग के फूल खिला लेते हैं और देखने वाले आश्चर्य में पड़ जाते हैं कि यह कैसा विचित्र गुलाब का पौधा है।

...ब कलम लगाना

इस विधि में किसी पौधे की टहनी या ...ने का भाग मिट्टी में दबा दिया जाता है और जब उसमें जड़ें निकल आती हैं तो ...ने या शाखा को मातृ पौधे से काटकर अलग कर देते हैं। इस तरह बड़ी सरलता से एक स्वतन्त्र नया पौधा बन जाता है और उसमें वही शुद्धता तथा गुण बने रहते हैं।

ठीक ऐसे ही गुटी लगाने और कर्तन कलम की विधियाँ भी हैं जिनमें कली के नीचे या तने में इस तरह से काट दी जाती है कि उसके नीचे से नयी जड़ें उत्पन्न हो जाएँ। जब जड़ें निकल आती हैं तो उसे काटकर अलग कर लेते हैं और इस तरह

(ऊपर से नीचे) **कली को नयी जगह बिठा दिया गया है; जोड़ को टेप से बाँधा जा रहा है; और अब यह नया गठबन्धन तैयार है, नवोत्पादन के लिए→**

CC-0. In Public Domain. Guru...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिलकुल नया पौधा तैयार हो जाता है। इसी तरह गन्ने, प्याज, आलू, अरवी, अदरक हल्दी आदि की आँख या कली वाले भाग को काटकर जमीन में दबा देने से भी नये पौधे उत्पन्न हो जाते हैं।

वर्धी जनन से लाभ यह है कि इस रीति से नया पौधा शीघ्र ही तैयार किया जा सकता है और यह शीघ्र ही फल भी देने लगता है। इसके साथ ही उसमें मातृ पौधे की शुद्धता और सभी अन्य गुण भी बराबर वैसे के वैसे बने रहते हैं।

पुष्पी भागों द्वारा कृत्रिम लैंगिक जनन

आजकल यह विधि बहुत उन्नत हो गयी है। इसमें मनुष्य द्वारा स्वस्थ और मन-पसन्द भिन्न-भिन्न लक्षणों वाले पौधों का इच्छानुसार परागण करके मनपसन्द गुणों वाली नयी-नयी स्वस्थ तथा उत्तम जातियों के उत्पादन के लिए संयोग (hybridization) किया जाता है। असमान पैतृक लक्षणों वाले भिन्न-भिन्न जाति के दो पौधों या एक ही जाति के दो भिन्न-भिन्न पौधों में संयोग या पर-निषेचन कराने की क्रिया को संकरण कहते हैं। प्राचीन काल के भित्तिचित्रों से ज्ञात होता है कि लोग उस समय भी खजूर आदि के पेड़ों में कृत्रिम परागण किया करते थे। आजकल तो यह क्रिया सामान्य-सी हो गयी है।

हमारे यहाँ भी संकरण तथा वरण द्वारा फसलों के सुधार और अधिक उपज के लिए अनुसंधान कार्य हो रहे हैं। कृत्रिम परागण की यह विधि इसलिए अपनायी गयी, क्योंकि इससे कई लाभ हैं। इससे इच्छित प्रकार के पौधे उत्पन्न किये जा सकते हैं और साथ ही नयी-नयी जातियों का उद्भव भी होता है। सुन्दर और नये-नये विचित्र प्रकार के आकर्षक पौधे उगाकर घरों-उद्यानों की शोभा बढ़ायी जा सकती है तथा सौन्दर्यप्रियता के गुण की सन्तुष्टि की जा सकती है। इस प्रकार उत्पन्न होने वाले पौधे स्वस्थ, नीरोग, ओजयुक्त, रोग-अवरोधी, तुषार-अवरोधी, शुष्कता-अवरोधी तथा म्लानता-अवरोधी होते हैं। फलतः स्वस्थ और नीरोग पौधों के कारण उपज अधिक होना भी स्वाभाविक है। इनके अतिरिक्त इस विधि से पौधे मौसम-बेमौसम भी उगाये जाते हैं और फसल के समय से पहले ही परिपक्व भी किये जा सकते हैं। वातावरण में परिवर्तन करके पौधों या फसलों को शीघ्र परिपक्व करने की इस चमत्कारी विधि को वसन्तीकरण (springification या vernalization) कहते हैं। सोवियत रूस में तो यह विधि व्यवहार में बहुत अधिक लायी जा रही है। इसी विधि के द्वारा वहाँ वर्ष में चार-पाँच फसलें उगायी जाती हैं। इसी सिद्धान्त को आधार मानकर मद्रास में अब आमों की फसल बेमौसम (अगस्त से मार्च) भी उत्पन्न की जा रही है। इसी तरह संकरीकरण (hybridization) के प्रयोगों से और उत्परिवर्तन (mutation) से अर्थात् परागण और निषेचन के समय परागकणों, अण्डाशय तथा निषेचित अण्ड में विकिरण (radiation), ताप तथा रासायनिक पदार्थों आदि की सहायता से इच्छानुसार परिवर्तन करके बदली हुई या उत्परिवर्तित जातियाँ भी उत्पन्न की गयी हैं।

इसी सन्दर्भ में जापान में बीजहीन फल वाले पौधे उत्पन्न करने वाले प्रयोगों की सफलता का स्मरण कराना भी आवश्यक होगा। इन आधुनिक उपायों से पौधे के या फसल के किसी भी लक्षण में कृत्रिम रूप से उत्परिवर्तन किया जा सकता है। फिर जो लक्षण अधिक लाभकारी सिद्ध होता है उसको छाँटकर नयी किस्म के रूप में उगाया जा सकता है और बिलकुल इसी आधार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर कई फसलों जैसे गेहूँ, धान, मूँगफली, चने आदि की सुधरी तथा उन्नत जातियाँ उत्पन्न भी की गयी हैं। गेहूँ की सीकुर रहित जाति में परिवर्तन करके उससे सीकुर वाली स्वस्थ और उत्तम जाति उत्पन्न की गयी।

मक्का में कृत्रिम परागण और निषेचन

पर-निषेचित फसलों में सबसे अधिक अनुसंधान कार्य मक्का पर किया गया है। इसीलिए यह फसलों के लिए नमूने के रूप में लिया जाता रहा है। इच्छानुसार पर-परागण तथा पर-निषेचन करने की इस कृत्रिम विधि में मक्का की लम्बी और बाहर निकली हुई वर्तिका (style) तथा वर्तिकाग्र (stigma) को प्लास्टिक या किसी कपड़े से ढक दिया जाता है और केवल कुछ इच्छित पौधों के ऊपरी सिरे पर के पुंकेसरों को छोड़कर बाकी सब पौधों के पुंकेसरों को काट दिया जाता है। समय-समय पर यह देख लिया जाता है कि पौधे परिपक्व हो गये हैं या नहीं। पुंकेसर के परिपक्व एवम् वर्तिकाग्र पराग के लिए तैयार हो जाने पर परागण की क्रिया आरम्भ कर दी जाती है। परागकणों को स्वयं लेकर या नली आदि द्वारा वर्तिकाग्र पर स्थानान्तरित कर दिया जाता है और निषेचन होने दिया जाता है। इस प्रकार से स्वस्थ पराग और स्वस्थ अण्डाशय वाले इच्छित पौधों में निषेचन से भुट्टे में दानों की पत्तियाँ, दानों का आकार, मण्ड प्रतिशत और रोग-अवरोधकता बढ़ जाती है। फलतः उपज की वृद्धि भी स्वाभाविक है। ●

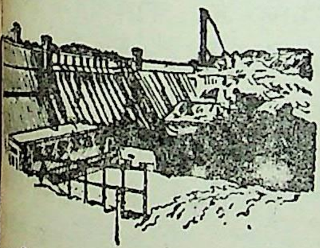

रेणुका बाँध
अब
तैयार हो गया है!

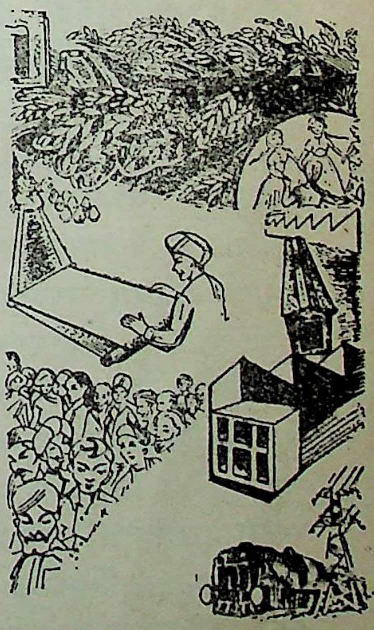

इससे पूर्वी उत्तर प्रदेश का कायापलट हो जायगा। इसकी बिजली से सिंचाई के लिए लगभग २५,०० ट्यूबवेल चलेंगे। १४ लाख एकड़ की सिंचाई होगी, कुटीर उद्योगों का विकास होगा। बड़े-बड़े कारखाने चलेंगे, बिजली की रेल चलेगी, लगभग २० लाख आदमियों को रोजगार मिलेगा।

उत्तर प्रदेश को ऐसी कई योजनाओं की आवश्यकता है
योजना के लिए अपना अंशदान दीजिए
छोटी से छोटी रकम का स्वागत है।
राष्ट्रीय बचत योजना में जमा कीजिए

उत्पादन बढ़ाइए और बचाइए • बचत का धन निर्माण में लगाइए!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचित्र संसार

नमक की नगरी

यह नगरी नमक ही नमक की बनी हुई है। ईंट-चूने का इसमें कुछ भी काम नहीं। पोलैण्ड के क्रेको नगर के निकट ही यह निराली नगरी है। इस नगरी का नाम वाएलिक्जा है। इस नगर में भूमि की सतह से १००० फुट तक की गहराई में नमक ही नमक की चट्टानों द्वारा मकान, सड़कें, होटल, चर्च, बाग-बगीचे, सिनेमाघर आदि बनाकर एक छोटा-सा शहर ही खड़ा कर दिया गया है। नमक की धवल चट्टानों द्वारा निर्मित यह शहर संगमरमर का बना दिखता है। इन्हीं चट्टानों से संसार का अधिकांश नमक-उत्पादन होता है। नमक की खुदाई इसी भूमिगत नगरी में वृहत रूप से की जाती है। वर्ष भर में लगभग ६० हजार टन नमक बाहर भेजा जाता है जो अपनी शुद्धता और उत्तमता के लिए प्रसिद्ध है।

लकड़ी का तमाशा

केश-विन्यास अर्थात् बालों की सजावट जापानी महिलाओं की अप्रतिम कला है और एक बार के विन्यास में काफी समय तथा श्रम लगता है। बालों की वह सजावट सोते समय चाहे जैसे और चाहे जहाँ पड़ रहने में खराब न हो जाए इसका उन्हें पूरा ध्यान रखना पड़ता है। इसके लिए सोते समय उन्हें काष्ठ का एक बेलन इस प्रकार गर्दन के नीचे लगाये रखना पड़ता है जिससे उनका सिर शैया से उठा ही रहता है।

हमाम गर्म है, गुस्ल कीजिए

फिनलैण्ड में तो हमाम घर-घर की प्रथा है। वहाँ जालीदार २-३ सीढ़ियों जैसे एक प्लेटफार्म पर स्नानार्थी कपड़े उतारे, लेटे रहते हैं। भट्ठी के ऊपर रखे हुए तप्त पत्थरों पर पानी छिड़कते ही वाष्प के बादल पहला वाष्प स्नान करा देते हैं। तत्पश्चात् किसी औषधीय वनस्पति की टहनी से शरीर को मला जाता है और उचित ताप आ जाने पर ठण्डे हौज में कूद पड़ते हैं।

सर्पग्रीव पक्षी

लम्बी, पतली और लहराती गर्दन का यह पक्षी जब पानी में तैरते समय अपनी गर्दन बाहर निकाले रहता है तब इसकी गर्दन एक सर्प जैसी दिखती है। इसी से इसे यह नाम दिया गया है। भारत, अफ्रीका तथा आस्ट्रेलिया के दलदली विस्तारों में यह पाया जाता है। मछली का शिकार करते समय इसकी नोकदार लम्बी गर्दन एक नुकीले भाले का काम देती है जो शिकार को छेद देती है। चोंच से पूंछ तक तीन फुट लम्बाई के इस पक्षी के पंखों का फैलाव चार फुट का होता है। पानी के किनारे और पानी की ही ओर पेड़ की

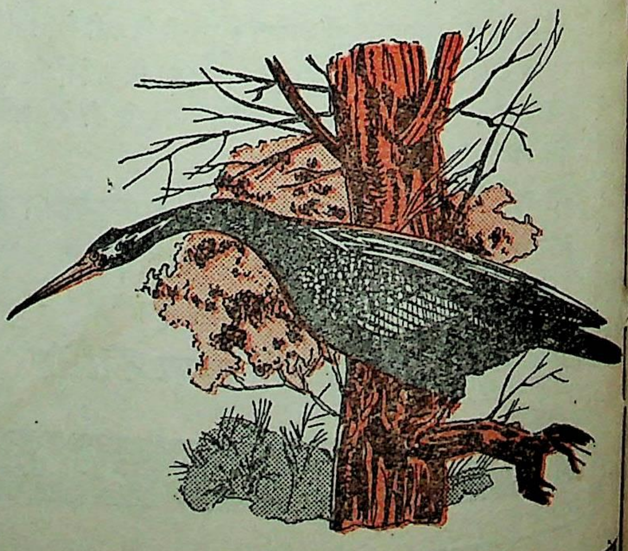

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झुकी हुई मजबूत डाल पर यह अपना घोंसला बनाता है।

आग...और धुआँ न दे

ऐसी ही आग पर खाना भी पकाया जाता है। न्यूगिनी के आदिवासी इस कला में पारंगत हैं। वे काठ की हँडिया को बार-बार भी आग पर चढ़ाना जानते हैं। जब कभी दावत का मौका होता है तब काठ के एक बड़े पीपे में उबालने वाली खाद्य वस्तुएँ भर दी जाती हैं। उस पात्र को आग पर नहीं चढ़ाया जाता किन्तु लाल तप्त अंगारे जैसे पत्थरों की तहें बीच-बीच में रख दी जाती हैं। अन्त में ढक्कन बन्द करके एक सूराख में से पानी छोड़ा जाता है। तुरन्त वाष्प बनता जाता वह पानी खाद्य वस्तुओं को उबाल देता है।

नेत्रहीनता भी जब हार गयी

१८वीं शताब्दी की बात है। इंग्लैण्ड के अर्ल सप्तम की पत्नी लेडी एमिली अति कुशल घुड़सवार थी। युवावस्था के उत्तर-काल में ही नेत्रहीन हो जाने पर भी ८५ वर्ष की परिपक्व वृद्धावस्था तक उसने घुड़-सवारी और शिकार का अपना दैनिक क्रम नहीं तोड़ा। केवल सहायतार्थ वह अपने साथ एक अंगरक्षक रखती थी। इतना कठिन परिश्रमी जीवन व्यतीत करने वाली उस महिला का अन्त बड़ी सामान्य घटना से हुआ। एक रात शिकार से लौटने पर उसने जब अपने महल में प्रवेश किया तो रास्ते में एक जलती मोमबत्ती पाँवों से उलट गयी और उससे जो आग फैली उसने एमिली और उसके महल को भस्म कर दिया।

ऊँट की ता-थेई-ता

क्षुद्र पतंगे से लेकर चित्र में प्रदर्शित विशालकाय ऊँट तक संगीत से अप्रभावित नहीं

रहते। भारत में लगने वाले मवेशियों के छोटे-बड़े मेलों में मनोरंजनार्थ ऊँट-नृत्य देखने को मिलते रहते हैं। उचित प्रशिक्षण के उपरान्त संगीत की लय और ताल के साथ ऊँट को कुशल नर्तन के लिए तैयार किया जा सकता है। रेगिस्तान का एकमात्र जहाज यह ऊँट आज वायुयान तथा मोटर बसों के युग में भी उतना ही उपयोगी वाहन है जितना इस युग के प्रारंभ में था।

जिन्दगी पानी में

फ्रान्स के कुछेक खानाबदोश परिवार पानी पर तैरते हुए अपने शिकारे पर ही जिन्दगी गुजार देते हैं। नहरों-नदियों को पार करते हुए वे घूमते हैं तथा माल बेचते फिरते हैं। परिवार की महिलाएँ शहर के एक सिरे पर शिकारे से उतरती हैं और शापिंग समाप्त करके दूसरे छोर पर पुनः शिकारे में आ जाती हैं। वे अपने बच्चों के लिए शिक्षा की व्यवस्था डाक द्वारा तथा जहाँ संभव हो वहाँ ऐसे ही तैरते स्कूल द्वारा कर लेती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नील्स बोर

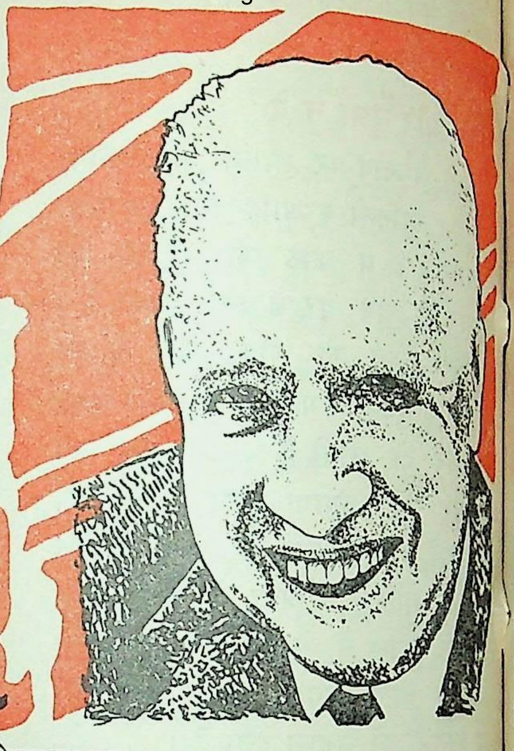

राजेन्द्रकुमार

परमाणु-विज्ञान कुछ तो आइन्स्टीन का ऋणी रहा है और अधिकांशतः नील्स बोर का आभारी है। नील्स बोर का स्थान आइन्स्टीन के पश्चात् आते हुए भी एक विशेषता लिये हुए है। नील्स बोर दर्जनों युवा वैज्ञानिकों के धर्मपिता (आचार्य) भी थे जो आज उन्हें गहरे स्नेहवश 'चचा निक' (Uncle Nick) के नाम से याद करके श्रद्धानत हो जाते हैं। नील्स के असंख्य शिष्य आज यह कहकर गौरव अनुभव करते हैं कि 'हम बोर के बालक' (Bohr's Boys) हैं। और सचमुच अपने उस आचार्य की प्रतिष्ठा के अनुरूप ही उनमें से कितने ही आज अन्तरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त हैं, जिनमें लेण्डाउ (Landau), गेमाओ (Gamou), टेलर (Teller), क्रेमर्स (Kramers), हीजेनबर्ग (Heisenberg) तथा फाउलर (Fowler) आदि कुछ नाम गिनाये जा सकते हैं।

७ अक्तूबर १८८५ को नील्स बोर का जन्म कोपनहेगन (डेनमार्क) में हुआ। दो वर्ष पश्चात् हेराल्ड बोर ने इनके छोटे भाई के रूप में जन्म लिया। पिता क्रिश्चियन बोर कोपनहेगन विश्वविद्यालय में प्रतिष्ठित प्राध्यापक थे। दोनों भाइयों की रुचि विज्ञान की ओर प्रारम्भ से ही थी। छोटे भाई हेराल्ड ने आगे चलकर गणितशास्त्र में अपनी प्रतिभा प्रदर्शित की और 'चचा निक' ने परमाणु विज्ञान को अपना लिया।

छात्र-जीवन में बोर-बन्धु फुटबाल के कुशल खिलाड़ी रहे। सुखी गृहस्थ जीवन और वैज्ञानिक प्रवृत्तियों में नील्सबोर के अदम्य उत्साह और अथक परिश्रम का प्रमुख श्रेय उनकी पत्नी मार्गरेथ (Margrethe) को है। स्नेह और सौजन्य में वह अपने पति से भी आगे थी। इनका घर, घर न रहकर छात्रों का एक संस्कार-केन्द्र बना हुआ था जिसमें व्यस्त रहकर भी पति-पत्नी आनन्द का अनुभव करते थे।

बोर ने २६ वर्ष की आयु (१९११) में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाक्टरेट लेकर विज्ञान के [illegible] जीवन का प्रारम्भ किया। सर्वप्रथम ये केम्ब्रिज-स्थित केवेण्डिश अनुसन्धानशाला पहुँचे। वहाँ निदेशक के पद पर ब्रिटिश वैज्ञानिक सर जे. जे. टामसन थे जिन्होंने इलेक्ट्रान की खोज की थी। बोर का दृष्टिकोण काफी सुथरा-सँवरा होने से वहाँ के रूढ़िचुस्त वातावरण में गाड़ी अधिक समय तक न चल सकी। टामसन द्वारा निर्मित परमाणु के माडल इन्हें जँचे नहीं और प्राय: ही नोंक-झोंक चलती रही। आखिर असन्तुष्ट मन से इन्होंने वहाँ से प्रस्थान किया और मैनचेस्टर जाकर लार्ड रदरफोर्ड (तब तक लार्ड नहीं बने थे) की शरण ली। न्यूजीलैण्ड निवासी अर्नेस्ट रदरफोर्ड उन दिनों परमाणु विखण्डन के अपने ऐतिहासिक प्रयोगों में लगे हुए थे।

रेडियो-सक्रिय पदार्थों से विकीरित उच्च ऊर्जायुक्त अल्फा कणों की बौछार द्वारा परमाणु का विखण्डन करने से रदरफोर्ड के प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकला कि परमाणु का समूचा धनावेश तथा पदार्थ-तत्त्व उसके एक नन्हें केन्द्रक में संग्रहीत रहता है। उस केन्द्रक को परमाणुनाभिक का नाम दिया गया। इस निष्कर्ष ने तब तक के प्रतिपादित अन्य समस्त परमाणु-सिद्धान्तों को हिलाकर रख दिया। बोर जब तक साथ रहे, रदरफोर्ड बड़ी सुविधा अनुभव करते रहे।

सन् १९०० में जर्मनी के प्रसिद्ध भौतिक विज्ञानवेत्ता मैक्स प्लांक का काफी दौर-दौरा था उनका क्वाण्टम सिद्धान्त बहुत प्रसिद्धि पा चुका था कि विकीरित ऊर्जा की अवस्थिति पैकटों के रूप में ही होनी चाहिए। ऐसे पैकटों को प्रकाश-क्वाण्टा (light quanta) कहा गया, क्योंकि एक पैकेट में अवस्थित ऊर्जा का मान प्रकाश की आवृत्ति (frequency of light) तथा उसका अंक h का गुणनफल माना गया। प्लांक का यह सिद्धान्त आगे चलकर फोटो इलेक्ट्रिक सेल के उद्योग तथा काम्प्टन प्रभाव के लिए बड़े महत्त्व का सिद्ध हुआ।

मैक्स प्लांक ने जब अपना उपरोक्त सिद्धान्त सर्वप्रथम प्रस्तुत किया तब बोर की अवस्था केवल १४ वर्ष की थी। अब २६ वर्ष के डाक्टरेट प्राप्त प्रो. बोर ने उसी क्वाण्टम सिद्धान्त को आड़े हाथों लिया। बोर का तर्क था कि जब विकीरित ऊर्जा पैकेटबन्द अर्थात् क्वाण्टम अवस्था में (quantised) मानी जा सकती है तब परमाणु के अन्दर चक्कर लगाते हुए इलेक्ट्रान की गतिशील ऊर्जा भी क्यों न क्वाण्टम अवस्था में मानी जाए? बोर ने यह प्रतिपादित किया कि नाभिक की परिक्रमा करते हुए इलेक्ट्रान सहज नहीं किन्तु कूदकर कक्षाएँ बदलते हैं।

१९१३ में बोर ने अपना प्रसिद्ध बोर सिद्धान्त प्रस्तुत करके परमाणु के अध्ययन की एक ऐसी पहेली को हल किया जिसे सुलझाने में विज्ञान-जगत विगत ३० वर्षों से लगा हुआ था और विशेषत: एक जर्मन अध्यापक जे. जे. बामर तो अपने वर्णपट में ही उलझा पड़ा था। परमाणु विज्ञान के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण खोजकार्यों के उपलक्ष्य में १९२२ में बोर को भौतिकी का नोबेल पुरस्कार दिया गया। तत्पश्चात् १९२६ में इन्हें रायल सोसायटी का विदेशीय सदस्य बनाया गया। इनके अतिरिक्त स्वीट्जरलैण्ड ने भी अपने राष्ट्र के दो सर्वोच्च सम्मानों (Order of the Elephant, Atoms for Peace Award) से इन्हें विभूषित किया।

द्वितीय महायुद्ध के दिनों में जब जर्मनी ने डेनमार्क पर आक्रमण किया तब बोर ने देश छोड़कर भागने की अपेक्षा देश ही में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहकर संकटकालीन परिस्थिति में अपनी सेवाएँ देना परम पुनीत कर्तव्य समझा। वे अपने असंख्य शिष्यों को उनके वैज्ञानिक अध्ययनों में सहायता देते रहे। देश पर संकट बढ़ता देखकर शिष्यों को यह उचित प्रतीत नहीं हुआ कि एक देशरत्न का जीवन व्यर्थ ही युद्ध की भेंट चढ़ जाए। अतः पूर्व-योजनानुसार उन्होंने एक अँधेरी रात को इनसे डेनमार्क का किनारा छुड़वा दिया। एक मछुए की सहायता से इन्होंने खाड़ी को पार किया और दूसरे किनारे पर खड़े हुए एक बमवर्षक वायुयान से उड़ चले। ऐसे वायुयानों में बैठने की सीटें तो होती नहीं। अतः एक गड्ढे में बैठे ही बैठे ये ऊँघते चले। यानचालक ने २-३ बार पुकारा किन्तु कोई उत्तर न पाकर उसे कुशंका हो गयी कि कहीं कुछ अनहोनी तो नहीं हो गयी; लेकिन सब कुछ ठीक ही था, केवल यही कि बोर को जरा गहरी नींद आ गयी थी।

यों संकट से बचकर शीघ्र ही बोर अमरीका पहुँच गये। वहाँ लॉस एलामौस (Los Alamos) पर परमाणुबम (Atom Bomb) की निर्माण-योजना में उपस्थित कठिनाइयों के कारण इनकी तीव्र आवश्यकता अनुभव की जा रही थी। ये वहाँ वरदान बनकर पहुँचे। इनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर अनेकों इनके शिष्य बन गये और स्नेहवश इन्हें 'चचा निक' कहने लगे।

युद्धोत्तरकाल में बोर ने विश्वशान्ति की दिशा में सर्न (CERN) संस्था (Centre European de Recherch Nucleaire) को उल्लेखनीय सेवाएँ दीं। इसी विषय में बोर ने १९४४ में ब्रिटिश एटमिक एनर्जी प्रोजेक्ट के अध्यक्ष सर जान एण्डरसन से तथा प्रधानमन्त्री चर्चिल से मन्त्रणाएँ भी कीं, किन्तु उनकी ओर से आशाजनक आश्वासन न मिले। तत्पश्चात् उसी वर्ष अगस्त में अमरीका के प्रेसीडेण्ट रूजवेल्ट से इन्होंने चर्चा की। वहाँ इनके परामर्श का समुचित सत्कार किया गया। इनकी सेवाओं के उप-लक्ष्य में इन्हें फोर्ड फेडरेशन की ओर से एटम फार पीस एवार्ड (Atoms for Peace Award) पुरस्कार दिया गया।

महान् दार्शनिक आइन्स्टीन और नील्स बोर में यद्यपि दीर्घकाल तक मतभेद रहा किन्तु अन्ततः आइन्स्टीन को प्रभावित होकर बोर का लोहा मानना ही पड़ा। साथ ही उन्होंने यह कहा—'बोर के सिद्धान्त सर्वथा त्रुटिशून्य हैं, यद्यपि मुझे वे भाते कम हैं।'

बोर के व्यक्तित्व में जो भी स्नेह, सौजन्य और आकर्षण था उसका मुख्य आधार उनकी पत्नी मार्गरेथ का व्यक्तित्व था। इनके कुल छह पुत्रों में सबसे बड़ा अपनी किशोरावस्था में ही एक नाव दुर्घटना का शिकार हो गया था और सबसे छोटा बाल्यावस्था में चल बसा था। शेष चारों पुत्र क्रमशः आगेय (Aage) एरिक (Eric), अर्नेस्ट (Earnest) और हंसा (Hansa) अपने-अपने क्षेत्र में अपने पिता की उज्ज्वल प्रतिभा के ज्योतिर्धर हैं। इनमें सबसे बड़े आगेय बोर अपने पिता के सच्चे प्रतिनिधि बने हुए पिता द्वारा स्थापित इन्स्टीट्यूट के निदेशक-पद पर हैं और अग्रणी भौतिकवेत्ता हैं।

१८ नवम्बर, १९६२ को ७७ वर्ष की अवस्था में परमाणु-विज्ञान का महान् वेत्ता नील्स बोर हमसे छीन लिया गया। परमाणु-विज्ञान का आज जो स्वरूप और आकार हमारे सामने है, उसका मूल ढाँचा बोर ने ही खड़ा किया था और यह भी कि भौतिक-विज्ञानाकाश के उस अति उज्ज्वल नक्षत्र ने अपनी आभा और प्रतिभा को उन शत-सहस्र नवोदित नक्षत्रों में समाविष्ट कर दिया है जो अनन्त जगमाते रहेंगे और परम स्नेही 'चचा निक' को न भुला सकेंगे। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

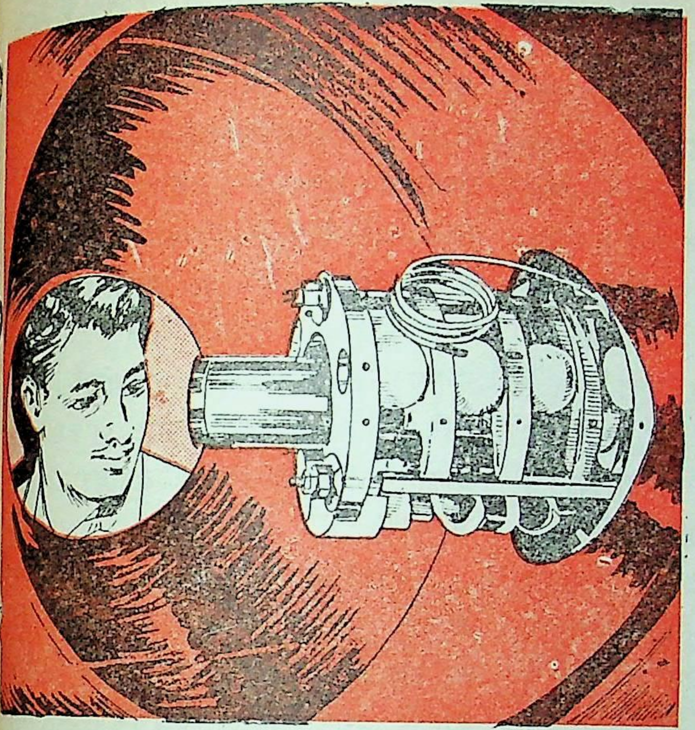

द्रव की चतुर्थ अवस्था प्लाज्मा

जगदीशचन्द्र गोविल

ठोस, द्रव और गैस-पदार्थ की इन तीन भौतिक अवस्थाओं से सभी भलीभाँति परिचित हैं। लगभग चालीस वर्ष पूर्व पदार्थ की एक अन्य अनोखी अवस्था का पता चला जो गैसीय होने पर भी सामान्य गैसों से सर्वथा भिन्न है। पदार्थ की इस अवस्था को, नोबेल-पुरस्कार विजेता इर्विंग लेंगम्यूर ने 'प्लाज्मा' की संज्ञा दी। प्लाज्मा क्या है और पदार्थ की अन्य अवस्थाओं से किस प्रकार भिन्न है, यह समझने के लिए पदार्थ की मौलिक रचना के विषय में थोड़ा जानना होगा।

रासायनिक पदार्थ प्रायः दो प्रकार के होते हैं: एक वे जो किसी भौतिक एवं रासायनिक क्रिया द्वारा दो या उससे अधिक विभिन्न पदार्थों में विभाजित नहीं किये जा सकते। ये मौलिक तत्त्व (elements) कहलाते हैं, जैसे लोहा, आक्सीजन आदि। दूसरे पदार्थ वे हैं जो दो या दो से अधिक मूल तत्त्वों से मिलकर बने हैं जैसे नमक, पानी इत्यादि। इन्हें 'यौगिक' (compounds) कहते हैं। वैसे सभी पदार्थ प्रत्यक्ष रूप में सतत (continuous) प्रतीत होते हैं किन्तु सचाई यह है कि प्रत्येक पदार्थ अत्यन्त सूक्ष्म कणों का सुसंगठित स्वरूप है। प्रत्येक तत्त्व अत्यन्त ही सूक्ष्म कणों में विभाजित किया जा सकता है। मूल तत्त्वों के ये सूक्ष्म कण 'परमाणु' (atom) कहलाते हैं। विभिन्न तत्त्वों के परमाणु भार एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। यौगिक भी सूक्ष्म कणों से ही मिलकर बनते हैं। यौगिक का वह सूक्ष्मतम कण जिसमें उस यौगिक के समस्त रासायनिक गुण विद्यमान रहते हैं 'अणु' (molecule) कहलाता है। अणु परमाणुओं से मिलकर बनता है।

ठोस, द्रव और गैस में अन्तर

पदार्थ की तीन अवस्थाओं से हम इतनी अच्छी तरह परिचित हैं कि देखकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही आभास हो जाता है कि कौन पदार्थ किस अवस्था में है। वैज्ञानिक दृष्टि से इन अवस्थाओं में क्या अन्तर है यह अणु सिद्धान्त के आधार पर देखा जा सकता है। ठोस पदार्थ के कण आपस में इतने निकट होते हैं कि उनके बीच लगे गुरुत्वाकर्षण बल के कारण वे परस्पर सटे रहते हैं। इसी कारण ठोस पदार्थ का आकार और रूप निश्चित रहता है। द्रवों के कण अपेक्षाकृत कुछ अधिक दूरी पर होने के कारण वे एक-दूसरे से पृथक नहीं हो पाते। यही कारण है कि द्रवों का आयतन निश्चित रहता है किन्तु उनकी शक्ल सहज ही बदल जाती है। इसके विपरीत गैसों में कणों के बीच इतनी अधिक दूरी रहती है कि वे परस्पर के गुरुत्वाकर्षण से विमुक्त होकर स्वतन्त्रतापूर्वक विचर सकते हैं। उनका न तो आयतन निश्चित रहता है और न शक्ल ही।

१९वीं सदी के अन्त तक परमाणु ही सबसे छोटा अविभाज्य कण समझा जाता रहा था किन्तु बाद में पता चला कि स्वयं परमाणु भी अन्य सूक्ष्मतर कणों में विभाजित किया जा सकता है जिन्हें मौलिककण कहते हैं। इनकी संख्या बीस के लगभग पहुँच चुकी है। इनमें इलेक्ट्रान, प्रोटान तथा न्यूट्रान वे प्रमुख मौलिककण हैं जिनसे परमाणु की रचना होती है। इलेक्ट्रान ऋण विद्युत की लघुतम इकाई है, इसकी संहति हाइड्रोजन परमाणु का लगभग दो हजारवाँ भाग है। प्रोटान का विद्युत आवेश इलेक्ट्रान के बराबर होता है परन्तु यह विपरीत जाति का अर्थात् धन विद्युत का होता है। इसकी संहति हाइड्रोजन परमाणु के लगभग बराबर होती है। न्यूट्रान आवेश रहित होता है तथा इसकी संहति प्रोटान की संहति के ठीक बराबर होती है।

परमाणु—एक सौर-मंडल

आधुनिक विचारों के अनुसार परमाणु के दो भाग हैं। एक केन्द्रीय भाग जिसे नाभिक (nucleus) कहते हैं तथा दूसरा बाहरी भाग जहाँ विभिन्न कक्षाओं में इलेक्ट्रान इस नाभिक के गिर्द चक्कर काटते रहते हैं। नाभिक से बाहर का भाग अधिकांश रूप से शून्य सरीखा है मानो वह स्वयं में एक नन्हा-सा सौर-मंडल है जिसमें ग्रहों की तरह इलेक्ट्रान परिक्रमा लगाते हैं। नाभिक नन्हा-सा होता है किन्तु परमाणु की अधिकांश संहति इसी में निहित रहती है। इलेक्ट्रानों के चक्कर लगाने की कक्षाएँ नाभिक के व्यास की तुलना में हजारों गुनी अधिक बड़ी होती हैं। सबसे बाहरी कक्षा

प्लाज्मा विद्युत का सुचालक है—**विद्युत धारा के गुजरने से उत्पन्न हुए चुम्बकीय क्षेत्र (तीर लगे वृत्त) से प्रभावित होकर वह सिमटकर बीच में जमा हो जाता है**

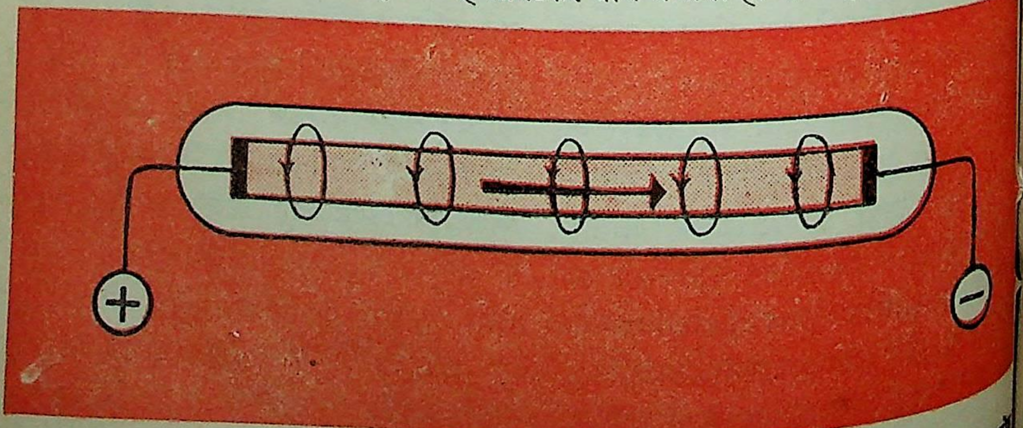

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

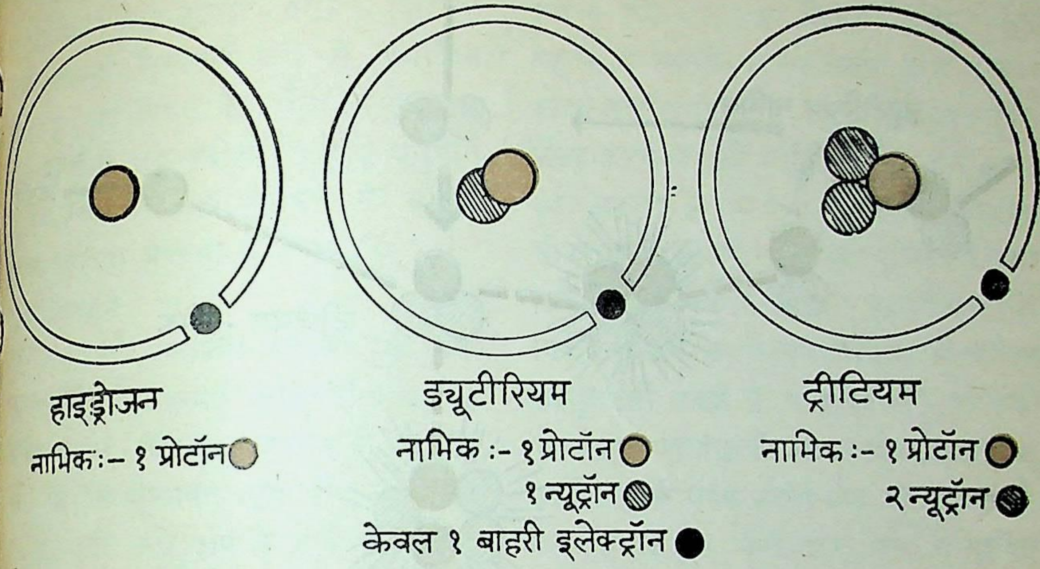

जो परमाणु का आकार निर्धारित करती है। सामान्य हाइड्रोजन का नाभिक केवल एक प्रोटान का बना होता है। अन्य सभी तत्त्वों के नाभिकों में धन विद्युन्मय प्रोटान के साथ-साथ आवेश रहित न्यूट्रान मौजूद रहते हैं। नाभिक के चारों ओर चक्कर काटने वाले ऋण विद्युन्मय इलेक्ट्रानों की कुल संख्या नाभिक के प्रोटानों की संख्या के ठीक बराबर होती है। इस कारण परमाणु समष्टि रूप से आवेश रहित रहता है। चक्कर काटने वाले इलेक्ट्रानों की कुल संख्या परमाणु के लिए विशेष महत्त्व रखती है। इसी संख्या पर परमाणु के रासायनिक तथा भौतिक गुण निर्भर करते हैं। इस संख्या को परमाणु-संख्या (atomic number) कहते हैं। प्रत्येक तत्त्व के लिए परमाणु-संख्या सदैव निश्चित रहती है किन्तु विभिन्न तत्त्वों की परमाणु-संख्या भिन्न-भिन्न होती है।

एक ही तत्त्व के ऐसे विभिन्न स्वरूप भी पाये जाते हैं जिनकी परमाणु-संख्या तो समान रहती है किन्तु नाभिक के भीतर न्यूट्रानों की संख्या बदल जाने के कारण उनका परमाणु-भार बदल जाता है। ये समस्थानिक (isotopes) कहलाते हैं। इनकी रासायनिक विशेषताएँ एक समान रहती हैं, क्योंकि नाभिक की रचना का रासायनिक गुणों पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता, केवल भौतिक गुण—भार आदि में अन्तर होता है।

आयन

यदि किसी प्रकार परमाणु के एक या अधिक इलेक्ट्रानों को परमाणु से पृथक कर दिया जाए तो उस परमाणु में प्रोटानों की संख्या इलेक्ट्रानों की संख्या से अधिक हो जाएगी। इस कारण वहाँ धन विद्युत आवेश की अधिकता हो जाएगी। इस दशा में परमाणु अथवा उनका समुदाय जो अपने इलेक्ट्रान गँवा देने के कारण धन विद्युन्मय हो जाते हैं, 'आयन' (ion) कहलाते हैं तथा इस क्रिया को आयनीकरण (ionisation) कहते हैं। परमाणु संरचना की दृष्टि से हाइड्रोजन विश्व का सबसे सरल तत्त्व है। सामान्य हाइड्रोजन के नाभिक में एक प्रोटान होता है जिसके चारों ओर केवल एक इलेक्ट्रान चक्कर लगाता है। हाइड्रोजन के अन्य दो समस्थानिक भी हैं। ये ड्यूटीरियम (deuterium) तथा ट्रीटियम (tritium) कहलाते हैं। एक ही तत्त्व के समस्थानिक होने के कारण नाभिक की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

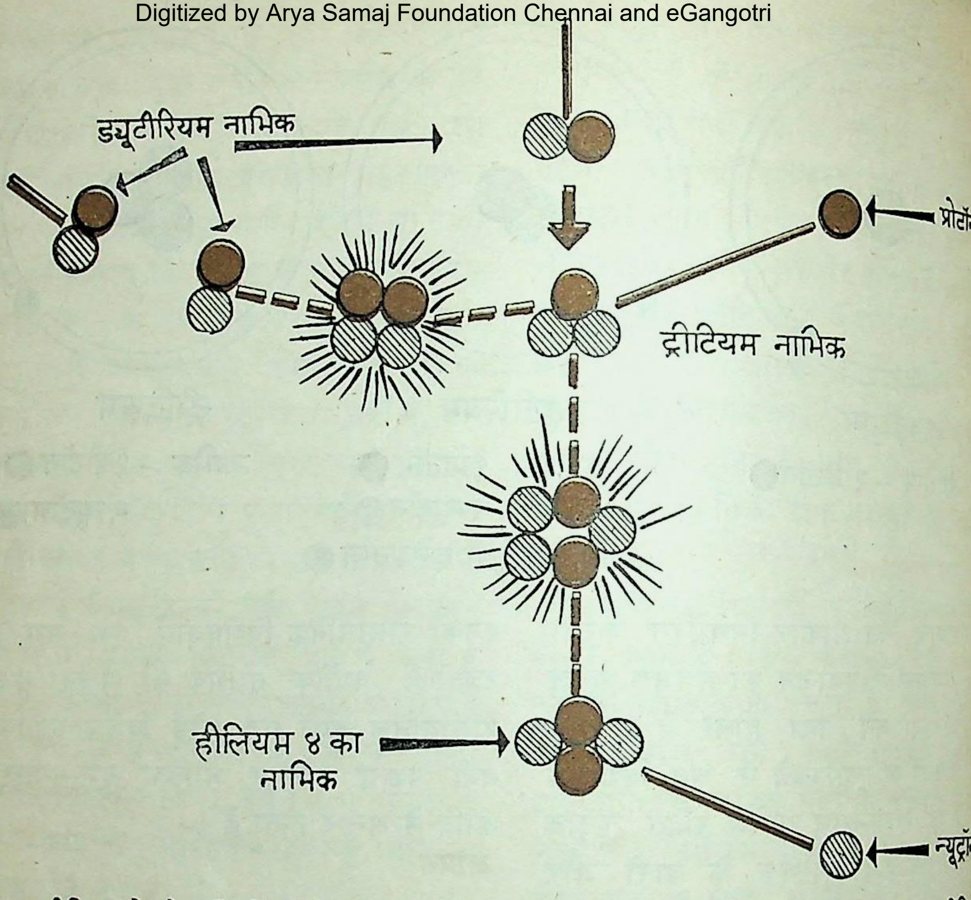

ड्यूटीरियम के दो नाभिकों की भिड़न्त से ट्रीटियम नाभिक का निर्माण होता है। तत्पश्चात् ड्यूटीरियम और ट्रीटियम नाभिकों की भिड़न्त से हीलियम-४ का निर्माण होता है। इस क्रिया में प्रोटान और न्यूट्रान हासिल होते हैं

परिक्रमा लगाने वाला इलेक्ट्रान तो इनमें एक ही होता है किन्तु नाभिक की रचना भिन्न होती है। ड्यूटीरियम का नाभिक एक प्रोटान और एक न्यूट्रान का बना होता है जबकि ट्रीटियम के नाभिक में एक प्रोटान और दो न्यूट्रान होते हैं। अन्य भारी तत्त्वों में इलेक्ट्रानों की संख्या बढ़ती जाती है तथा नाभिक की रचना भी अपेक्षाकृत जटिल हो जाती है। स्पष्ट है कि हाइड्रोजन और उसके समस्थानिकों का पूर्ण आयनीकरण करना अपेक्षाकृत कहीं अधिक सरल है क्योंकि इनमें से बस एक इलेक्ट्रान को, जो नाभिक के एकाकी प्रोटान से ही आकर्षणबद्ध रहता है, हटाना पड़ता है।

प्लाज्मा

किसी परमाणु का आयनीकरण करना सरल काम नहीं है। हाइड्रोजन गैस के ता[illegible] को लाखों डिग्री ऊँचा करने पर ही उसके इलेक्ट्रान नाभिक से पृथक हो पाते हैं। ता[illegible] के बढ़ने से इलेक्ट्रान की गतिज ऊर्जा अधि[illegible] हो जाती है जिसके कारण उनके घूमने की गति बढ़ जाती है। गति बढ़ने के साथ ही केन्द्रापसारी बल (centrifugal force) भी बढ़ता है जिसके कारण इलेक्ट्रान नाभि[illegible] के आकर्षण से मुक्त होकर पृथक हो जा[illegible] हैं। इनका वेग अत्यधिक होने के कार[illegible] इलेक्ट्रान रहित नाभिक इन्हें फिर से प[illegible] पाने में असमर्थ रहते हैं। इस प्रकार [illegible] नाभिक और इलेक्ट्रान तप्त आयनीकृत गैस [illegible] पृथक-पृथक स्वच्छन्द होकर घूमते रहते हैं [illegible] नाभिकों और इलेक्ट्रानों से बनी वह त[illegible] और पूर्णतया आयनीकृत गैस ही 'प्लाज[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(plasma) है। सामान्य गैसों के विपरीत यह प्लाज्मा चुम्बकीय क्षेत्र से प्रभावित होता है। यह विद्युत का वैसा ही सुचालक होता है जैसी ताँबे सरीखी धातुएँ। अनुमान है कि विश्व का ६५ प्रतिशत से अधिक पदार्थ प्लाज्मा अवस्था में है।

ऊर्जा के स्रोत

पदार्थ की प्लाज्मा अवस्था में ऊर्जा की अद्‌भुत सम्भावनाएँ निहित हैं। १९२९ में ऐटकिन्सन और हाउटरमैन्स ने सुझाव रखा था कि सम्भवत: सूर्य और तारों पर करोड़ों डिग्री ऊँचे ताप के होने के कारण वहां का पदार्थ (जो अधिकतर हाइड्रोजन है) प्लाज्मा अवस्था में है। इस भीषण ताप के कारण हाइड्रोजन के चार नाभिक परस्पर जुड़कर हीलियम के नाभिक का निर्माण करते हैं। इस क्रिया में बेहिसाब ऊर्जा विमुक्त होती है। इस प्रकार नाभिकों के परस्पर जुड़ने की क्रिया को 'संश्लेषण क्रिया' (fusion reaction) कहते हैं। यह क्रिया यूरेनियम जैसे भारी तत्त्वों के परमाणु-नाभिकों का खंडन करके ऊर्जा विमुक्त कराने की क्रिया अर्थात् नाभिकीय-खंडन-प्रतिक्रिया (nuclear - fission reaction) की बिलकुल विपरीत क्रिया है।

ऊंचा ताप आवश्यक

संश्लेषण क्रियाएँ अत्यधिक ऊँचे ताप पर ही सम्पादित हो सकती हैं। इसका एक कारण तो यह है कि इसके लिए पदार्थ प्लाज्मा अवस्था में होना चाहिए अन्यथा परमाणु-नाभिक इलेक्ट्रानों से छुटकारा नहीं पा सकते। दूसरा कारण यह है कि प्लाज्मा के नाभिकों पर समान रूप से धन जाति का विद्युत आवेश फैला रहता है जिसके कारण उनके बीच परस्पर हटाव-बल लगता है। ताप को अत्यधिक ऊँचा करने पर ही नाभिकों का वेग इतना बढ़ सकता है कि वे हटाव-बल के बावजूद भी निकट आकर परस्पर संश्लेषण कर सकें। इस क्रिया के लिए हाइड्रोजन और विशेष रूप से उसके समस्थानिक ही अधिक उपयुक्त हो सकते हैं, क्योंकि इनके नाभिकों पर विद्युत आवेश की मात्रा न्यूनतम होने के कारण इनके मध्य हटाव-बल भी अपेक्षाकृत कम होता है। ऊँचे ताप पर सम्पादित होने के कारण संश्लेषण प्रतिक्रियाएँ प्राय: थर्मो-न्यूक्लियर-प्रतिक्रियाएँ (thermo-nuclear reactions) कहलाती हैं।

अमरीकी वैज्ञानिकों ने हाइड्रोजन बम जैसे प्रलयकारी शस्त्रों का निर्माण करके यह सिद्ध कर दिया है कि थर्मो-न्यूक्लियर-प्रतिक्रियाओं द्वारा पृथ्वी पर अपार शक्ति पैदा की जा सकती है। किन्तु हाइड्रोजन

उड़ानगत प्लाज्मा राकेट—**इस प्रायोगिक उड़ान के अन्तर्गत राकेट के तलद्वार से तेजपुंज के रूप में प्लाज्मा नजर आ रहा है**

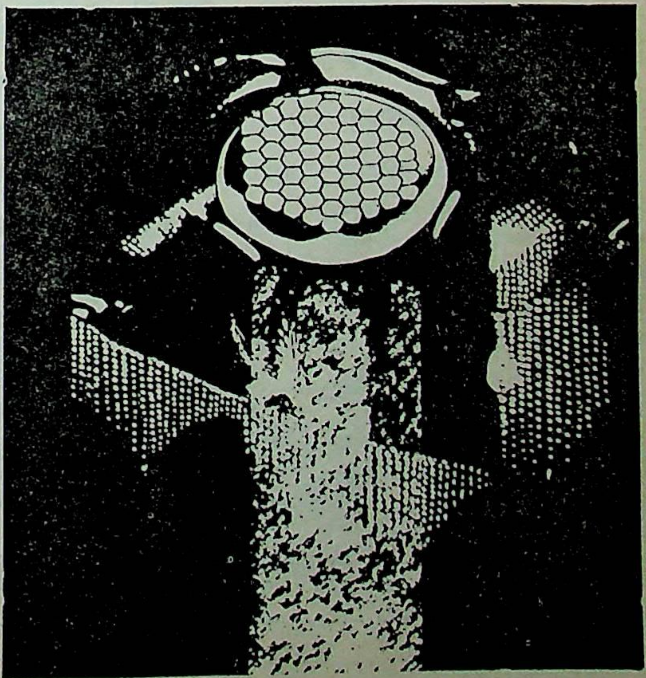

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बम के विस्फोट से विमुक्त हुई ऊर्जा को रचनात्मक कार्य के लिए कैसे उपयोग में लाया जा सकता है? निश्चय ही रचनात्मक कार्य के लिए तो ये क्रियाएँ पूर्णतया नियंत्रित ढंग से ही सम्पन्न की जानी चाहिए तथा यह भी आवश्यक है कि लागत के अनुपात में प्रचुर मात्रा में ऊर्जा हासिल की जा सके। इस दृष्टि से दस करोड़ डिग्री ऊँचा ताप ड्यूटीरियम और ट्रीटियम प्लाज्मा के लिए अधिक उपयुक्त ठहरता है। परन्तु प्लाज्मा को इतने ऊँचे ताप तक गरम कैसे किया जाए और फिर उसे किस प्रकार के बर्तन में रखा जाए? संसार में कोई पदार्थ ऐसा नहीं है जो इतने ऊँचे ताप को सह सके। साथ ही संश्लेषण क्रिया से ऊर्जा द्रुतगामी कणों की बौछार के रूप में प्राप्त होती है। प्रश्न यह है कि इसे विद्युत शक्ति में कैसे बदला जाए। इस प्रकार की अनेकों समस्याएँ हैं जिनका हल खोजने में अनेक वैज्ञानिक लगे हुए हैं। सैद्धान्तिक रूप से उन्होंने बहुत कुछ सफलता प्राप्त कर ली है किन्तु अनेकों व्यावहारिक कठिनाइयाँ ऐसी हैं जिन्हें अभी तक पूरी तरह से हल नहीं किया जा सका है। विश्वास किया जाता है कि पाँच-सात वर्ष के भीतर ही वैज्ञानिक इन कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर लेंगे और तब थर्मो-न्यूक्लियर रीऐक्टर का निर्माण करना सम्भव हो जाएगा। इन रीऐक्टरों में ड्यूटीरियम ही ईंधन का काम करेगा। समुद्र के पानी से ड्यूटीरियम प्रचुर मात्रा में प्राप्त किया जा सकता है और तब यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि हम 'पानी को जलाकर' शक्ति प्राप्त कर सकेंगे। निश्चय ही भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हमें 'प्लाज्मा' का ही आभारी होना पड़ेगा।

आजादी खतरे में है। अपनी पूरी ताकत लगाकर इसकी रक्षा कीजिए।

जवाहरलाल नेहरू

साधनों को सुरक्षित रखिए

भारत के साधन बहुत मूल्यवान हैं। सभी साधनों को देश की ताकत बढ़ाने के महत्त्वपूर्ण काम में पूरी तरह लगा देना चाहिए। यही एक ऐसा तरीका है जिससे हम आजादी पर आये इस खतरे का मुकाबला कर सकते हैं। फजूल-खर्ची और व्यर्थ की बर्बादी से राष्ट्र को नुकसान पहुंचेगा। आजादी की एक कीमत होती है और हमें वह पूरी तरह चुकानी है।

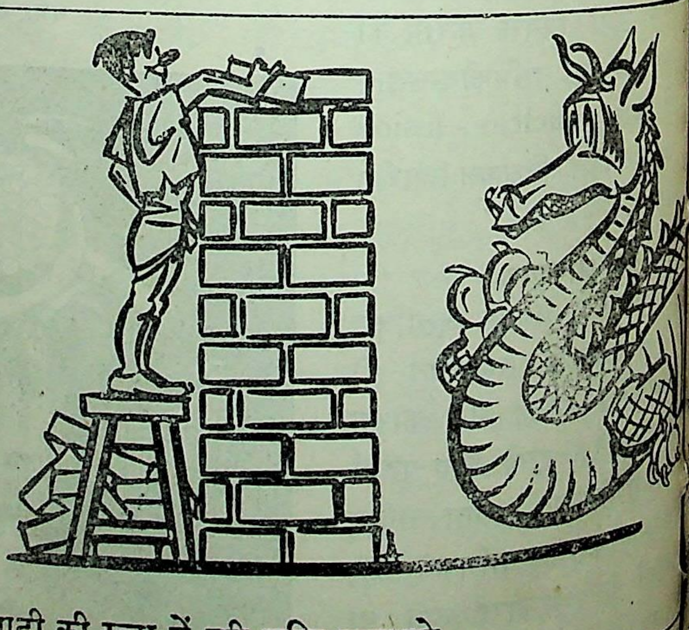

आजादी की रक्षा में पूरी शक्ति लगाइये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

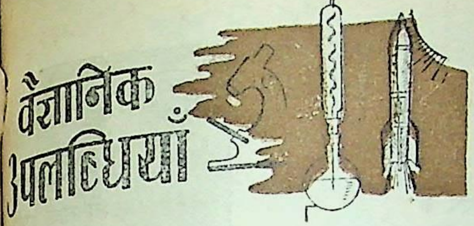

६०० फुट ऊँचे टावर पर रेस्तराँ

वेस्ट एण्ड, लन्दन का डाक विभाग एक अनोखा टावर बना रहा है। ५८० फुट ऊँचे इस टावर की छत पर ४० फुट ऊँचा एरियल लगाया जाएगा ताकि डाक विभाग टेलीफोन और टेलीविजन के संवाद अधिक क्षमतापूर्वक ग्रहण तथा प्रसारित कर सके। इसी में ५२० फुट की ऊँचाई पर एक आलीशान रेस्तराँ भी होगा जहाँ से दर्शक दूर-दूर तक का दृश्य देख सकें। सन् १९६५ तक यह टावर तैयार हो जाएगा।

चिकने फर्श पर अब क्यों फिसलें

बोस्टन (अमरीका) की वाल्टर लियन्स कं. ने एक ऐसा घोल तैयार किया है जो गंधहीन, चर्म के लिए हानिशून्य तथा दाग न छोड़ने वाला है। फ्लिट की भाँति इसे यन्त्रयुक्त पम्प द्वारा फ़र्श पर छिड़क देने से फर्श पर चलने में विशेष सावधानी की आवश्यकता नहीं—कैसा भी चिकना फर्श क्यों न हो, आपका पैर फिसलेगा नहीं।

डूबते को और भी शीघ्र सहायता

जिन क्लबों के कुण्डों और तालाबों में तैरना सिखाया जाता है वहाँ नौसिखिये प्रायः ही दुर्घटनाग्रस्त हो जाते हैं। कहीं-कहीं तो साथ आये हुए बच्चे ही सरकते हुए पानी में जा गिरते हैं जिनका बड़ी देर बाद पता चलता है। इनके प्रति सुरक्षा का नवीन साधन तैयार कर लिया गया है। पानी के अन्दर एक ऐसी संवेदक प्लेट तैराये रखते हैं जो प्रत्येक हलचल को ग्रहण तथा प्रसारित कर देती है। इसका सम्बन्ध एक घण्टी से रहता है। किसी भी वस्तु के गिरने तथा निश्चित समय तक न उभर आने पर वह प्लेट सक्रिय हो जाती है और तुरन्त खतरे की घण्टी बज उठती है।

अणुवीक्षक, दृश्य प्रसारक भी

ऐसा द्विउद्देशीय सूक्ष्मदर्शी तैयार किया गया है जिसके द्वारा सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु का आवर्द्धित रूप न केवल देखा जा सकता है, बल्कि पर्दे पर उस दृश्य को प्रक्षेपित भी किया जा सकता है। इसमें एक विशेषता और भी है कि इसका दर्शक लेन्स एक मापांकित आवरण से भी युक्त है जिससे उस दृश्य को कागज पर उतारा भी जा सकता है।

गुब्बारे आजकल भी

'वी' आकृति का तथा गुब्बारों से युक्त यह विशालकाय यान १०० फुट से भी अधिक लम्बा है। अमरीका के एक्रन नगर के ऊपर गगन से बातें करता हुआ यह यान वायु-निरीक्षक संयंत्रों से सुसज्जित है और वायुमण्डल के महत्त्वपूर्ण अवलोकनों को अपनी वेधशाला में भेज रहा है। इसके गुब्बारों में हीलियम गैस है। तेज से तेज तूफानों में भी यह अपना कार्य सुचारु रूप से करता रहेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अ च्छी त था अ स हा री !

गोल्डन ईगल

ला ग र बी य र

गोल्डन इगल बीयर अच्छी है क्योंकि यह ठण्डी, ताजी तथा साफ है—यह सर्वत्र लोकप्रिय बीयर गर्मियों में वास्तविक प्यास बुझाने वाली है।

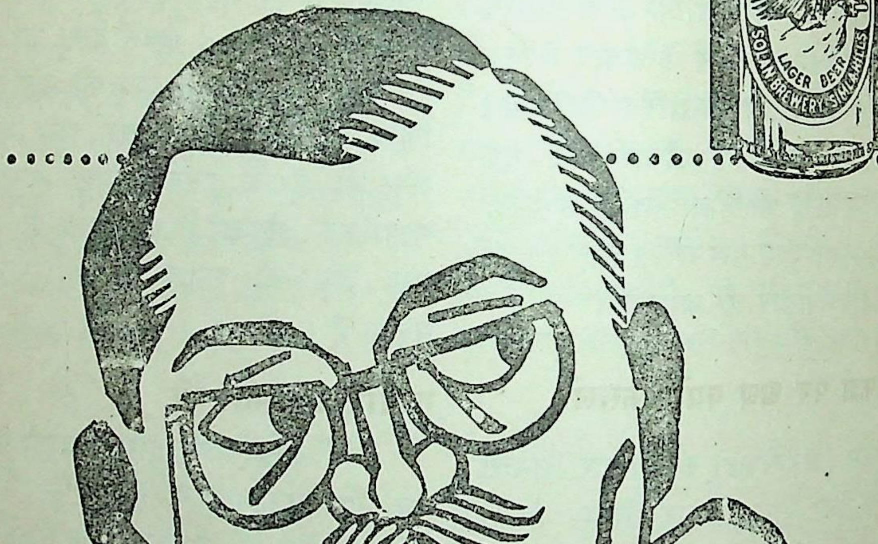

डा य र मी कि न ब्रू अ री ज लि०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये विलक्षण चींटियाँ

ओमशंकर बाजपेई

प्रकृति ने अपनी सृष्टि में अनेकों ऐसी अद्भुत एवं रहस्यमय लीलाओं का निर्माण किया है जिन्हें देखकर या जानकर सभी को विस्मय होता है। प्रकृति के इस लीला प्रांगण में सामान्य मानव प्रविष्ट नहीं हो पाता। अतः उसका ज्ञान सीमित ही रह जाता है। आइये, कुछ ऐसी ही आश्चर्यजनक तथा मनोरंजक लीलाओं का वर्णन जन्तु जगत में देखें।

सिलाई करने वाली चिड़िया (Tailor Bird) का वर्णन अधिकांश लोगों ने पढ़ा होगा। किन्तु इस सिलाई करने वाले कीड़ों के विषय में शायद अधिक लोग परिचित न होंगे। सिलाई करने वाली चिड़िया जिस प्रकार अपना घोंसला बनाती है उसी तरह ईकोफिला (*Oecophylla*) नामक चींटी पत्तियों को सीकर अपने रहने का स्थान सुरक्षित करती है। ये चींटियाँ उष्ण-कटिबन्धीय प्रदेशों में पायी जाती हैं। ईकोफिला चींटियाँ पत्तियों के किनारों को एक प्रकार के रेशम के धागों से सीकर अपना घर बनाती हैं। इनके सिलाई करने के ढंग को जानकर मनुष्य आश्चर्य में पड़ जाता है। ईकोफिला के लार्वे (larvae) अपने शरीर पर एक प्रकार का रेशम तैयार करते हैं। इसी रेशम को लेकर बड़ी चींटियाँ पत्तियों के किनारे सी डालती हैं। चींटियों का यह एक विशेष गुण है कि वे किसी भी कार्य को अकेले नहीं करतीं। इसी प्रकार दर्जी चींटियाँ भी सिलाई अकेले नहीं करतीं बल्कि अनेकों एक साथ कार्य में जुट जाती हैं। वे पत्ती के किनारों को पकड़कर पास घसीट लेती हैं और इस अवस्था में सम्हाले रहती हैं। कुछ अन्य चींटियाँ अपने लार्वे को लाकर पत्ती के दोनों किनारों पर आगे पीछे ढकेलती हुई आगे बढ़ाती हैं। ईकोफिला का लार्वा एक जीती-जागती रेशम की रील की तरह पत्तियों के किनारों पर लुढ़कता जाता है और किनारे सिलते जाते हैं। यह रहा इन चींटियों का घर बनाने का ढंग।

जन्तुओं के पालतू जन्तु

चींटियों की कुछ जातियाँ अपने कार्यों में वह कौतूहल रखती हैं जो सचमुच ही मनुष्य को विस्मय में डाल देता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यूरोप तथा उत्तरी अमरीका में एक प्रकार की चींटी पायी जाती है जो हेटीरियस (*Hetaerius*) नामक छोटे से गुबरीले को बड़े शौक से पालती है। जैसे हम कुत्ता पालते हैं या गाय पालते हैं, ठीक उसी तरह ये चींटियाँ हेटीरियस को पालती हैं। ये गुबरीले चींटियों से अपनी सेवा करवाते हैं और उनसे भोजन प्राप्त कर उनके मेहमान बने रहना पसन्द करते हैं। हेटीरियस और इन चींटियों का रिश्ता बड़े मनोरंजन का विषय है। वास्तव में चींटियाँ इस गुबरीले का चेहरा चाटने में आनन्द लेती हैं और इसीलिए वे इसे अपने मकान में रहने देती हैं तथा आलसी गुबरीले को भोजन करवाती हैं। यह आलसी हेटीरियस अपने भोजन के लिए भी कहीं नहीं जाता; क्योंकि वह बड़ी चतुराई से अपना भोजन चींटियों से ही प्राप्त कर लेता है। जब चींटियाँ हेटीरियस का मुँह चाटना शुरू करती हैं तो वह कुछ समय के बाद अपनी गर्दन को सिकोड़कर चेहरे को धड़ के अन्दर समेट लेता है, इस प्रकार इसका चेहरा चींटियों से छिप जाता है। ऐसी हालत में चींटियाँ अपना भोजन उगलकर उसके आगे डाल देती हैं, जिसे गुबरीला महाशय खाना पसन्द करते हैं। इस भोजन को खाने के लिए गुबरीला फिर अपनी गर्दन बाहर निकालता है तथा भोजन खाकर मुँह चटवाना शुरू कर देता है, मगर अधिक देर तक नहीं। इस प्रकार बार-बार वह अपनी गर्दन अन्दर को सिकोड़ता तथा बाहर निकालता और चींटियों से भोजन प्राप्त करता रहता है। ऐसा देखा गया है कि ये चींटियाँ जब किसी समय सैर को निकलती हैं तो अपने प्यारे गुबरीले को साथ ही ले जाती हैं। यहाँ भी इस हेटीरियस की मक्कारी कम नहीं होती। यह अपने पैर समेटकर गोल हो जाता है और मास्टर चींटियों को इसे ढकलते हुए ले जाना पड़ता है। आलसियों में शायद यह सबसे बड़ा आलसी कीड़ा होगा। अतः जानवर पालने का शौक मनुष्य तक ही सीमित नहीं है वरन् छोटे-मोटे कीड़े भी इस प्रकार का शौक रखते हैं और उसे बड़े परिश्रम से पूरा करते हैं।

जीवित स्टोर-हाउस

चींटियों की जाति में कई प्रकार की चींटियाँ होती हैं, जैसे मजदूरी करने वाली

पर्ण-छेदक (leaf-cutter) चींटियाँ पत्तों को कुतरकर अपने बिल में ले जा रही हैं, जहाँ इन पर खाने योग्य फन्जाई उपजायी जाएगी

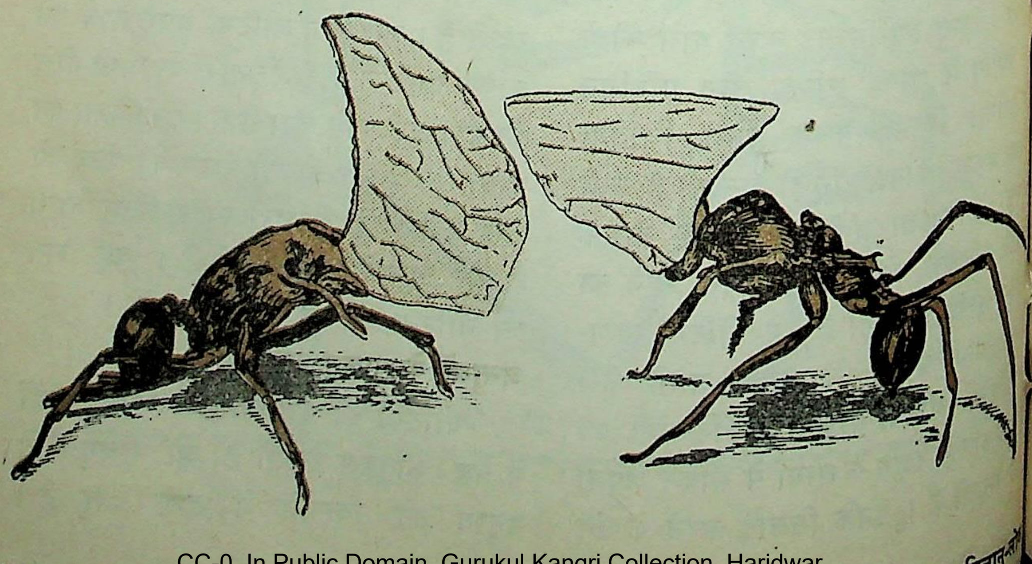

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

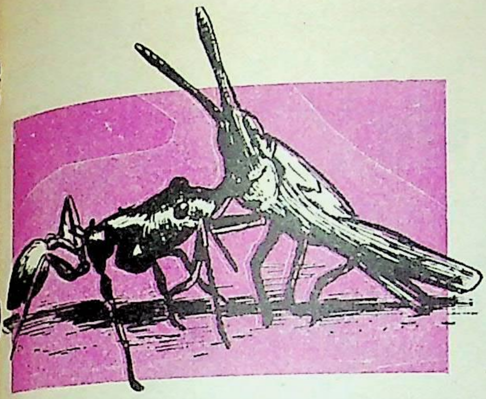

Daceton जाति की शिकारी चींटी, एक टिड्डी का शिकार करके उसे ले जाती हुई

चींटियाँ, लड़ने वाली चींटियाँ आदि-आदि। इसी वर्ग में कुछ शहद की चींटियाँ भी होती हैं। ये चींटियाँ अपने बिलों में अनेक छोटे-छोटे कमरे बनाती हैं, जिनकी दीवारें तथा फर्श बहुत चिकने होते हैं, किन्तु छत विशेष रूप से खुरदरी बनी होती है। शहद की चींटियों में कुछ साधारण सेवक यानी नौकर चींटियाँ होती हैं। इनका काम शहद इकट्ठा करना रहता है। शहद इकट्ठा करने के उपरान्त वे शहद की चींटियों के आगे लाकर उगल देती हैं और शहद की चींटियाँ उन्हें बड़े विचित्र रूप से संग्रह कर लेती हैं। यह संग्रह किया हुआ शहद अकाल के समय काम आता है। इन चींटियों की सारी क्रिया इस प्रकार होती है—एक बिल में हजारों चींटियाँ रहती हैं, जिनमें अधिकतर मेहनत मजदूरी करने वाली होती हैं। कुछ चींटियाँ शहद संग्रह करने वाली होती हैं और शेष मकान की देखभाल करने वाली। मजदूर चींटियाँ पेड़ों पर जाकर शहद एकत्र करती हैं। शहद इकट्ठा करने के साथ-साथ, पौधों पर रहने वाले प्लान्ट लाइस (Plant lice) नामक छोटे से कीड़े को भी लूटकर उससे एक प्रकार का मीठा द्रव प्राप्त कर लाती हैं। प्लान्ट लाइस अपना भोजन अपने पेट में संग्रह करता है और ये चींटियाँ अपनी मूछों से उस बेचारे कीड़े को मारती हैं जब तक वह मीठा द्रव बाहर नहीं निकाल देता। इस द्रव तथा शहद को ये चींटियाँ अपने बिलों में ले आती हैं। यहाँ आकर ये चींटियाँ संग्रह करने वाली चींटियों के सामने सारा द्रव तथा शहद उगल देती हैं, जिसे संग्रह करने वाली चींटियाँ खा जाती हैं। ये संग्रह करने वाली चींटियाँ चिकने तथा छोटे कमरों की छतों में चिपटी रहती हैं और इतना भोजन संग्रह कर लेती हैं कि इनका पेट फूलकर फट-सा जाता है और सिर तथा धड़ का कहीं पता तक नहीं चलता। वैज्ञानिक अभी तक इस बात को नहीं समझ सके कि आखिर ये चींटियाँ छत में ही क्यों चिपटी रहती हैं। अकाल के समय जब भोजन की कमी होती है तब बिल में रहने वाली सभी चींटियाँ इन जीते-जागते गोदामों पर हमला बोल देती हैं और उन्हें पीटकर उनसे एकत्र शहद तथा मीठा द्रव निकलवाकर खाती हैं और समय काट देती हैं। अभी तक यह नहीं समझा जा सका कि सभी चींटियाँ जीते-जागते स्टोर-हाउस बन सकती हैं या केवल एक विशेष जाति ही इस काम को पूरा करती है। इन्हें देखने से यह पता चलता है कि चींटियाँ बुरे समय के लिए किस प्रकार उपधान जुटातीं तथा कितने मनोरंजक ढंग से कार्य करती हैं।

जन्तु-गुलाम

इसी श्रृंखला में एक स्वीटजरलैण्ड में पायी जाने वाली चींटी का वर्णन उपयुक्त जान पड़ता है। इसका नाम पोलीयेरगस रूफेसेन्स (*Polyergus Rufescens*) है। ये चींटियाँ अपने भोजन की स्वयं कोई व्यवस्था नहीं करतीं और न ही अपने बच्चों की देखभाल करती हैं। अपने मकान की देख-भाल, सफाई तथा खाना एकत्र करने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक वैज्ञानिक बात . . .

मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि हमें अपने बच्चों की दूसरों के बच्चों से तुलना नहीं करनी चाहिए । मनोवैज्ञानिकों के अनुसार इससे बच्चों के स्वाभाविक विकास में बाधा पहुंचती है । यही बात मेट्रिक बाटों के सम्बन्ध में है । नन्हे मुन्नों (और मेट्रिक बाटों) के गुणों को परखिये और उन्हें ज्यों का त्यों अपनाइये ।

मेट्रिक तोल का जोड़-तोड़ करके सेर न बनाइये ।

इसमें आपका समय व्यर्थ ही नष्ट होगा और लेन-देन में अक्सर नुकसान रहेगा ।

सही और सुविधाजनक लेन-देन के लिए

पूर्ण अंकों में

मेट्रिक इकाइयों का प्रयोग कीजिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए ये चींटियाँ फार्मिका फुस्का (*Formica fusca*) नामक चींटी को दास बना लेती हैं, जो इसका सारा काम करती रहती है और पोलीयेरगस आराम से जीवन बिताती हैं।

फार्मिका चींटियाँ बच्चे पैदा नहीं कर सकतीं। अतः कुछ समय में ये दास चींटियाँ मरकर नष्ट हो जाती हैं। ऐसे समय में पोलीयेरगस की स्थिति बड़ी दयनीय हो जाती है। इसका अर्थ यह नहीं कि पोलीयेरगस बैठी सोचती रहती है कि अब क्या करना चाहिए। वे तुरन्त फार्मिका की तलाश में निकल पड़ती हैं और घूम-फिरकर उसके बिल को देख आती हैं। फिर बहुत बड़ी संख्या में निकलकर फार्मिका के बिलों पर आक्रमण कर देती हैं तथा फार्मिका के अण्डों को उठा लाती हैं। ये अण्डे पोलीयेरगस के बिलों में ही बढ़कर बच्चे होते हैं जो धीरे-धीरे वहीं रहने लगते तथा पोलीयेरगस की दासता स्वीकार कर लेते हैं। इन दास चींटियों पर कड़ी निगरानी रखी जाती है ताकि ये कहीं भाग न जाएँ।

सामुदायिक मौत

विभिन्न प्रकार के जन्तुओं की जानकारी विभिन्न प्रकार से मनोरंजक होती है। किन्तु सभी मनोरंजन केवल जीवन बनाये रखने के उपायों में ही सीमित नहीं रहता। संसार में ऐसे प्राणी भी मौजूद हैं जिनमें मौत का आह्वान वैज्ञानिक तथा सामान्य दृष्टि से उत्सुकता का विषय बन गया है। लेमिंग (leming) नामक एक छोटा-सा चूहा (वास्तव में यह चूहा नहीं होता बल्कि उसी की तरह का एक जानवर होता है) स्केण्डीविया के पठारों पर पाया जाता है। यह जानवर पठारों पर उगने वाली घास

चींटियाँ अपने आकार से कई गुनी बड़ी वस्तुएँ खींच ले जाने में समर्थ हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को खाकर ही जीवन निर्वाह करता है। इस वर्ग में सन्तानोत्पत्ति बड़ी तीव्र गति से होती है। धीरे-धीरे एक समय आ जाता है कि पर्वतीय ढालों पर घास समाप्त हो जाती है, किन्तु इस जानवर की वंश वृद्धि अपनी चरम सीमा पर ही होती रहती है। अतः इसे भागना पड़ता है। लेमिंग पठारों को छोड़कर गाँवों, देहातों तथा अन्य जंगलों को पार करता हुआ आगे बढ़ता जाता है। यह देखा गया है कि स्थान परिवर्तन के समय असंख्य लेमिंग अपनी यात्रा पर निकल पड़ते हैं। रास्ते में उन्हें लोमड़ी तथा अन्य शिकारी जानवर मारकर खाते जाते हैं। इतना ही नहीं, बाज तथा उल्लू जैसे शिकारी पक्षी भी इनका भोजन कर डालते हैं। अन्त में लेमिंग का समुदाय समुद्र के तट पर पहुँच जाता है। वे सभी समुद्र की लहरों में प्रवेश कर जाते हैं तथा मर जाते हैं। जो थोड़े से लेमिंग पहाड़ों पर रह जाते हैं वे पुनः वृद्धि करते हैं और लगभग चार वर्ष में उनकी संख्या फिर लाखों में पहुँच जाती है, खाना फिर समाप्त होता है और इनकी सामूहिक आत्महत्या की दौड़ पुनः दिखाई देती है। असीमित वंशवृद्धि तथा सीमित भोजन के विषम अनुपात के कारण बेचारे लेमिंग बार-बार लाखों की संख्या में प्राण गँवाते हैं। यही वंशवृद्धि पर प्राकृतिक नियंत्रण है। आखिर प्रकृति में यह सब क्यों होता है इसे वैज्ञानिक समझने में असमर्थ है! ●

हाई स्कूल और हायर सेकण्डरी कक्षाओं के लिए हमारे उपयोगी प्रकाशन

१. **जन्तु-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : ३·००
(उत्तर प्रदेश बोर्ड द्वारा स्वीकृत)

२. **वनस्पति-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : ३·००
(उत्तर प्रदेश बोर्ड द्वारा स्वीकृत)

३. **प्रारम्भिक भौतिकी**—दयाप्रसाद खण्डेलवाल, मूल्य : ३·५०
(उत्तर प्रदेश बोर्ड द्वारा स्वीकृत)

४. **प्रैक्टिकल जन्तु-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : २·००

५. **प्रैक्टिकल वनस्पति-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : २·००

६. **सामान्य विज्ञान**—मेहरोत्रा, विद्यार्थी, खण्डेलवाल, मूल्य : ६·२५

७. **सरल माध्यमिक जीव-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : ५·००
(राजस्थान बोर्ड द्वारा हाई स्कूल और हायर सेकण्डरी की कक्षा ९ और १० के लिए स्वीकृत)

श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्यारे बच्चो !

पिछली गर्मियों में जिन दिनों तुम जहाँ-तहाँ छुट्टियाँ मना रहे होगे, उन्हीं दिनों तुमने पढ़ा होगा कि समानव अन्तरिक्ष-उड़ान में सोवियत उड़ाकों ने इस बार संसार को चमत्कृत कर दिया। वह चमत्कार था—दो यात्रियों की, दो पृथक् यानों में अन्तरिक्ष की सह-उड़ान। उनमें एक था बाइकोव्स्की और दूसरा कु. वेलेन्तीना तेरेश्कोव। तेरश्कोव संसार की एकमात्र महिला है जो प्रथम बार धरती से उठकर अन्तरिक्ष में चक्कर लगा आयी और सकुशल पृथ्वी पर लौट भी आयी।

तुम्हारे अनेक पत्रों में **'तुम्हारी कलम से'** स्तम्भ के लिए नये विषय की माँग मुझ से की गयी है। मेरा अनुमान है कि **'स्वतंत्र भारत के प्रसिद्ध वैज्ञानिक'** तथा **'हमारे वर्तमान नवोदित वैज्ञानिक'** जैसे विषयों पर तुम और तुम्हारे सदस्य-मित्र अपने-अपने नगरों तथा क्षेत्रों से ऐसे वैज्ञानिकों तथा विज्ञानवेत्ताओं के फोटो सहित परिचय तथा उनकी उपलब्धियों के सचित्र विवरण संकलित करके मुझे भेजें। रचनाएँ उत्तम होने पर अवश्य प्रकाशित होंगी और उनसे भारत के वैज्ञानिकों के प्रति भारतीय जनता की रुचि और जानकारी बढ़ेगी।

यही बात **'करो और देखो'** के लिए कहनी है। सही अर्थ में वैज्ञानिक तथा दैनिक उपयोग की वस्तुएँ बनाने के प्रयोग देने की अब भी तीव्र माँग है। पिछले जून अंक में प्रकाशित 'टेस्ट ट्यूब में तुला' सरल प्रयोग होते हुए भी अनेक मित्रों ने उसे उपयोगी पाया है।

'मुझे सीपी कहते हैं', 'पारमेंत्यर और आलू', 'आइसक्रीम की बहार-वेनीला' और **'घातक रेडियो विकिरण'** लेख विशेष पसन्द किये जाने के समाचार तुम्हारे अनेक मित्रों ने अपने पत्रों में मुझे भेजे हैं।

तुम्हारे नये पत्रों की प्रतीक्षा में,

तुम्हारी,
कृष्णा दीदी

प्रतियोगिता संख्या ४१ के विजेता

प्रथम पुरस्कार

रामकुमार (५६२६) दिल्ली।

द्वितीय पुरस्कार

त्रिभुवननाथ (७१००) बीकानेर।

तृतीय पुरस्कार

गिरीशचन्द्र (११५७) आगरा, अशोक गुप्ता (२७०१) लखनऊ, वीरेन्द्रनाथ श्रीवास्तव (३४२६) इलाहाबाद, संजय गुप्ता (३४६७) लखनऊ, प्रदीपकुमार (४१३५) इलाहाबाद, जगदीशप्रकाश गुप्त (६६१६) कानपुर, सुरेशकुमार गुप्ता (७१६०) अमृतसर, कु. माया देवी (८६०४) कानपुर।

कूपन : प्रतियोगिता संख्या ४३

सदस्य संख्या..............................

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान लोक के नये सदस्य

ओमप्रकाश
(स. सं. ४०४४)

प्रदीपनारायणलाल
(स. सं. ५५३०)

दिलप्रसाद
(स. सं. ५७१२)

रामनारायण
(स. सं. ६२२४)

रमाशंकर
(स. सं. ६२३५)

६६२९ गोविन्दप्रसाद (१६) इलाहाबाद, ३० मधुसूदन (१७) लखनऊ, ३१ बजरंगलाल (१६) सरदारशहर, ३२ महेशचन्द्र (१८) अलीगढ़, ३३ स्वराज बिहारी (१८) आगरा, ३४ प्रकाश (१८) आगरा, ३५ कु. अरुणा (१३) आगरा, ३६ नरेश कुमार (२०) आगरा, ३७ सुधीरकुमार (१५) आगरा, ३८ कृष्णचन्द (१७) लश्कर, ३९ केशवदेव (१३) बाँदा, ४० किशोरसिंह (१५) बीकानेर, ३१ भूषणकुमार (१४) उज्जैन, ४२ पुरुषोत्तमदास (१५) रायगढ़, ४३ राजेन्द्रकुमार (१४) विदिशा, ४४ बसंतकुमार (१४) विदिशा, ४५ अरुणोदय (१२) भोपाल, ३६ अजयकुमार (११) मोतीहारी, ४७ कु. निराशा (१५) बोरियो, ४८ यशवात्स्यायन (१७) बटाला, ४९ जेठनशाँ (१६) कलकत्ता, ५० दिनेशकुमार (१४) गोरखपुर, ५१ व्रजनन्दनराम (१४) जहानाबाद, ५२ प्रवीणकुमार (१२) दिल्ली, ५३ त्रिलोकचन्द (१६) दिल्ली, ५४ भजनवीर (१४) कानपुर, ५५ चन्द्रशेखर (१७) मल्हारगढ़, ५६ आर. बी. अग्रवाल (१७) जबलपुर, ५७ जसवीरसिंह (१६) इन्दौर, ५८ रमेश (१५) अजमेर, ५९ विजयचन्द्र (१७) नसीराबाद, ६० आलोक (११) जमशेदपुर, ६१ श्रीनारायण (१५) मुजफ्फरपुर, ६२ भँवरलाल (१८) नौगाँव, ६३ कु. चन्द्रकांता (१६) बम्बई, ६४ सुशीलकुमार (१४) वाराणसी, ६५ कामताप्रसाद (१५) कलकत्ता, ६६ हरबंससिंह (१७) हीराकुड, ६८ विजयकुमार (१६) कलकत्ता, ६९ पंकजकुमार (१३) भागलपुर, ७० नवलकिशोर प्रसाद (११) दरुआरा, ७१ राजेन्द्रकुमार (१४) सीकर, ७२ इन्द्रनारायण (१६) पटोरी, ७३ प्रभाशंकर (१५) सकरिया, ७४ रामनन्दन (१६) श्रीपाथर, ७५ डी. कमल (१६) रांची, ७६ रजनीकांत (१३) मोटीमारड, ७७ शैलेन्द्रकुमार (१३) लखनऊ, ७८ वीरेन्द्रकुमार (१६) बिजनौर, ७९ दयालसरन (१५) आगरा, ८० दर्शनसिंह (१७) रायपुर, ८१ वीरेन्द्रकुमार (१२) रानीपुर, ८२ कुलप्रसाद (१३) डिगबोई, ८३ प्रेमनारायण (१४) आगरा, ८४ मोहनमाधवराव (१४) नागपुर, ८५ हरिश्चन्द्र (१०) दिल्ली, ८६ भुरितराम (१६) खरसिया, ८७ त्रिलोकचन्द्र (१५) ब्यावर, ८८ रणजीत (१६) कलकत्ता, ८९ सूर्यकान्त (१२) भोपाल, ९० शिवकुमार (१८) अलीगढ़, ९१ अम्बेशकरन (८) जोधपुर, ९२ राकेशकुमार (११) इलाहाबाद, ९३ सरयूप्रसाद (१७) गया, ९४ रमेशचन्द्र (१८) शाजापुर, ९५ राममूर्ति (१६) जर्वे, ९६ अशोककुमार (१४) दिल्ली, ९७ राजेशकुमार (१२) दिल्ली, ९८ सुरेश (१२) नागपुर, ९९ हरीशचन्द्र (१५) कोटा, ६७०० पंकजशरण (१४) बुलन्दशहर, १ राजनारायण (१६) पडरीकलां, २ कु. सुषमा (१५) नौगाँव, ३ राजेन्द्रकुमार (१४) तिलकनगर, ४ पार्थसारथी (१५) पूना, ५ जयकर (१४) चाइबासा, ६ अजयकुमार (१२) जौनपुर, ७ शशिभूषण (१४) बीकानेर, ८ कु. पूर्णिमा (१६) रायपुर, ९ ए. के. सूर (२०) रायपुर, १० सुरेशचन्द्र (१२) अलिराजपुर, ११ ओमप्रकाश (१४) कुक्षी, १२ कु. मंजूश्री (१३) फैजाबाद, १३ व्रजभूषण (१७) बेगमपुर, १३अ विष्णुप्रसाद (१३) भोपाल, १४ ज्ञानताकुमारी (१०) पिपरिया, १५ अनिलकुमार (१६) आगरा, १६ महेन्द्रनारायण (१४) फुलपरास, १७ विनोदकुमार (१४) जसीडीह, १८ नन्दलाल (१४) मुँगेर, १९ सुवीरकुमार (११) गोरखपुर, २० अविनाशचन्द्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१४) जबलपुर, २१ एच. एन. मुरलीधर (१७) जबलपुर, २२ प्रेमकुमार (१७) हाटा, २३ राजेन्द्रसिंह (१५) बड़ौत, २४ सत्यनारायण (१७) भटिण्डा, २५ काशीनाथ (१५) खगौल, २६ विकासप्रसाद (१५) पूर्णियाँ, २७ सोमचन्द्र (१२) कुक्षी, २८ दिनेशकुमार (१२) धनबाद, २९ कु. गीता बेनेगल (१४) देहरादून, ३० गिरीशकुमार (१५) हाटा, ३१ रीताकरण (९) धनबाद, ३२ दिलीपकुमार (१४) बम्बई, ३३ प्रकाश बाबूराव (१३) बम्बई, ३४ शरदेन्दु (१३) मोतीहारी, ३५ राधेश्याम (१३) हाटा, ३६ विजयकुमार (१३) करौरा, ३७ श्यामसुन्दर (१३) कटरासगढ़, ३८ आदित्य (१२) लश्कर, ३९ ए. क्लेवर्स (१३) रांची, ४० विजयकुमार (११) कटरास बाजार, ४१ अब्दुलहई (१५) रायपुर, ४२ रामप्रसाद (२०) जमशेदपुर, ४३ जोसेफ विक्टर विजयधर (१६) मुजफ्फरपुर, ४४ प्रकाशसिंह (१३) कानपुर, ४५ सुरेशचन्द्र (१८) आगरा, ४६ अशोक (१६) कोटा, ४७ जगदीशनारायण (१५) नेतरहाट, ४८ राउल गोम्स (१६) जमशेदपुर, ४९ तारकेश्वरप्रसाद (१६) गनपतगंज, ५० कु. मुक्ता बालादास (१५) वाराणसी, ५१ रमानिवास (१३) हनुमना, ५२ विजयकुमार (१२) सरेन, ५३ प्रभातरंजन (१४) धनबाद, ५४ सरोश एम. दलाल (१६) जमशेदपुर, ५५ नन्दकिशोर (१५) गिरीडीह, ५६ रमेशचन्द्र (१४) पिथौरागढ़, ५७ शमसुद्दीन (१८) वाराणसी, ५८ प्रकाशकुमार (१२) पडरौना, ५९ ईश्वरचन्द्र (२५), पडरौना, ६० आसिफ जैदी (१३) आगरा, ६१ गोपाल जालान (१६) गिरीडीह, ६२ गोपालकुमार (१०) मालिनी, ६३ अरुणकुमार (१८) कामठी, ६४ अशोक बेनेगल (११) देहरादून, ६५ सत्यप्रकाश (१४) करौरा, ६६ सच्चिदानन्दसिंह (१३) हरनाथपुर, ६७ विन्देश्वरीकुमार (१२) हरनाथपुर, ६८ कु. रेखारानी (१२) पटना, ६९ शिवयतनकुमार (१४) अथमल गोला, ७० प्रेमेशनारायण (१५) बिलग्राम, ७१ श्यामानन्दप्रसाद (१५) कटिहार, ७२ अखिलेशकुमार (१६) झाँसी, ७३ महेशदत्त (१६) ब्यावर, ७४ केशवचन्द्र (११) वाराणसी, ७५ विश्वनाथ (१८) कानपुर, ७६ गणेशदत्त (१५) जबलपुर, ७७ मेवालाल (१८) भानतलैया, ७८ चन्द्रमोहन (१३) हिंगनघाट ७९ रामकिशोर (१५) जैतारन, ८० द्वारकादास (१७) बड़वानी, ८१ प्रद्युम्नचन्द्र (१२) उज्जैन, ८२ शिशिर (११) आगरा, ८३ विद्याशंकरलाल (१४) अनिसाबाद, ८४ महावीरशरण (१५) गोरखपुर, ८५ विजयसिंह (१८) सादुलपुर, ८६ कु. विजयलक्ष्मी (१२) लश्कर, ८७ मंगतमल (१९) सादुलपुर, ८८ योगेन्द्र (१३) मेरठ, ८९ राजकुमार (१५) लश्कर, ९० विजयजनार्दन (१७) आद्रा, ९१ कमलाकांत (१६) सुन्दरगढ़, ९२ वेदप्रकाश (१५) लुधियाना, ९३ विक्रमकुमार (१४) लश्कर, ९४ रमेशकुमार (१४) ग्वालियर, ९५ पशुपतिनाथ (११) सिवान, ९६ बलवीरसिंह (१२) नई दिल्ली, ९७ बजरंग (१५) हावड़ा, ९८ श्रीराम (१६) सिवान, ९९ रमेशचन्द्र (१७) सुपौल, ६८०० त्रिभुवननाथ (१३) सिवान, १ काशीनाथ (१४) नापासर, २ रमेशचन्द्र (१६) हरद्वार, ३ रंजनकुमार (१०) हरद्वार, ४ सुभाषचन्द्र (१०) हरद्वार, ५ रवीन्द्रनाथ (१३) सिवान, ६ शिवदयाल (१८) कटक, ७ महावीरप्रसाद (१३) सिवान, ८ ध्रुवजीप्रसाद (१४) सिवान, ९ जगदीशचन्द्र (१३) सोयतकलां।

ब्रिजलाल
(स. सं. ७८१०)

बद्रीप्रसाद
(स. सं. ७८२२)

मदनगोपाल
(स. सं. ७८९०)

विपिनबिहारी
(स. सं. ८१४२)

विन्ध्याचलप्रसाद
(स. सं. ८५३९)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

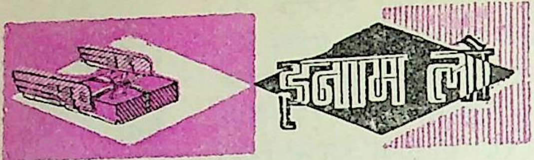

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ४३

प्रथम पुरस्कार — २५ रु. की पुस्तकें
द्वितीय पुरस्कार — २० रु. की पुस्तकें
तृतीय पुरस्कार — १५ रु. की पुस्तकें

अन्तिम तिथि : ३१ अगस्त

इस प्रतियोगिता में केवल विज्ञान क्लब के सदस्य भाग ले सकते हैं। प्रतियोगिता में भाग लेने का कोई शुल्क नहीं है। नीचे दिये हुए प्रश्नों के उत्तर अलग कागज पर स्याही से साफ-साफ लिखकर पृष्ठ ५५ पर छपे कूपन के साथ लिफाफे में बन्द कर इस पते पर भेज दो :

कृष्णा दीदी, संचालिका, विज्ञान क्लब, विज्ञान-लोक, आगरा

लिफाफे पर 'विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ४३ का उत्तर' लिखना आवश्यक है। उत्तर ३१ अगस्त तक उपरोक्त पते पर अवश्य पहुँच जाने चाहिए। बाद में आये उत्तरों पर विचार नहीं किया जाएगा।

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ४३ के प्रश्न

१. ब्राउन कोल, कोयले की किस अवस्था का नाम है ? इसका पारिभाषिक नाम तथा इसमें कार्बन की प्रतिशत मात्रा क्या है ?

२. लेंगरहेन्स द्वीप (Langerhans islands) कहाँ हैं, किस लिए प्रसिद्ध हैं ?

३. प्रथम भू-भौतिकी वर्ष की अवधि कब से कब तक की थी ?

४. टार पीडो क्या है ? इसका आविष्कार किसने किया ?

५. पृथ्वी पर कौन-सी वनस्पति सर्वाधिक मात्रा में पायी जाती है ?

६. हमारे नेत्रपटल के किस बिन्दु पर स्प[ष्ट]तम बिम्ब पड़ता है और क्यों ?

७. सूत के धागे में काउण्ट (count) [से] क्या अभिप्राय है ? यह किस प्रकार निर्धारित कि[या] जाता है ?

८. भूगर्भ में कौनसी धातु सबसे अधिक पा[यी] जाती है ?

९. प्रेयरी डाग (Prairie dog) का वर्गी[करण] करण किस जाति के जन्तुओं में किया जाता है ?

१०. फोल्डिंग चेयर का आविष्कार कि[सने] किया ?

प्रतियोगिता संख्या ४१ के प्रश्नों के उत्तर

१. ज्हॉन डाल्टन ने १७६४ में। वह और उसका भाई वर्णान्ध थे। इसी विषय पर उसने अपना खोजपूर्ण प्रबन्ध पढ़ा था।

२. फर्नीचर में प्रचुरता से काम आने वाला महोगनी का वृक्ष। चाँदनी रात में इसमें नमी कम, मजबूती अधिक तथा रंग भी उत्तम होता है।

३. त्वचा से सटी हुई रक्त-केशिकाएँ मस्तिष्क द्वारा संचालित ज्ञान तन्तुओं से सक्रिय होकर रक्त प्रवाह तेजी से बढ़ा देती हैं। तभी लाली नजर आती है

४. अन्दर की गर्मी पाकर अतिरिक्त आक्सीजन पृथक् होकर शेष पानी रह जाता है और उठती हुई आक्सीजन झाग देती हुई निकलती है।

५. ओस्मियम। एक घन फुट टुकड़े का भार लगभग १४०० पौण्ड।

६. स्टाइलेप।

७. पलकों को स्वस्थ रहने के लिए आर्द्र [बना] रहना आवश्यक है। यह कार्य अदृश्य श्रम-ग्रन्थि[याँ] बीच-बीच में करती रहती हैं। उनका अतिरि[क्त] जल-भाग तथा धूलिकण आदि ब्रुश की भाँति [साफ] करके पलकें कोने के उन छिद्रों में ले जाती हैं [जो] नासिका में खुलते हैं।

८. मिसिसिपी नदी मिनोओस्टा (Min[ne]osta) में स्थित इटास्का झील (Itasca) के [किनारे] चलते-चलते आसानी से लाँघी जा सकती है।

९. दक्षिणी आस्ट्रेलिया तथा तस्मा[निया] में।

१०. दक्षिणी अफ्रीका में पाया जाने वाला [वृक्ष] मेन कैण्डिल तथा पनामा नहर के निकट पाया [जाने] वाला कैण्डिल ऐसे ही वृक्ष हैं जिनकी [...] लम्बी फलियाँ खायी भी जाती हैं और मोमबत्ती [की] तरह जलाने में भी काम आती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूरदर्शी बनाइए

आप यह दूरदर्शी (telescope) सस्ते में तथा सरलता से तैयार कर सकते हैं। इसे बनाने से पूर्व निम्न साधन एकत्रित कीजिए :

१. लगभग ५० से. मी. नाभ्यान्तर (focal length) का एक ताल (lense)। इस ताल का वास्तविक नाभ्यान्तर (माना) 'य' से. मी. है। इस ताल को 'क' नाम से पुकारेंगे।

२. लगभग ६ से. मी. नाभ्यान्तर का एक अन्य लेन्स। इसे 'ख' लेन्स तथा इसके नाभ्यांतर को 'र' से. मी. कहेंगे।

('य' तथा 'र' के स्थान पर आप इन लेन्सों के वास्तविक नाभ्यांतर लिख सकते हैं)।

३. गत्ते (cardboard) की एक शीट,

४. गोंद तथा कुछ रद्दी कागज की पट्टियाँ।

निर्माण विधि

१. गत्ते का एक टुकड़ा (य+२)×२४ से. मी. का लेकर उससे एक नली के आकार का चौकोर डिब्बा बनाइये जिसके दोनों सिरे खुले हों। जोड़ों पर कागज की पट्टियाँ चिपकाकर मजबूत कर दीजिए। इस नली का आकार बनने पर (य+२)×६×६ से. मी. होगा (चित्र १)

२. इसी प्रकार, एक दूसरा डिब्बा (र+४)×२३ से. मी. के गत्ते के टुकड़े से बनाइए।

३. इन दोनों डिब्बों में से प्रत्येक डिब्बे की किसी एक दीवाल को किसी एक सिरे से एक से. मी. की दूरी तक काट दिया। चित्र १ में यह भाग बिन्दुमय रेखाओं से दिखलाया है।

४. गत्ते के दो वर्ग एक ६×६ से. मी. तथा दूसरा ५·७५×५·७५ से. मी. के लेकर पहले में से 'क' लेंस के व्यास के बराबर तथा दूसरे में से 'ख' लेंस के व्यास के बराबर वृत्त काट लिया। इस प्रकार बचे वर्गों में से पहले से बड़ी नली के उस सिरे को बन्द कर दिया जिस ओर से आपने एक दीवाल एक से. मी. तक काट दी थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

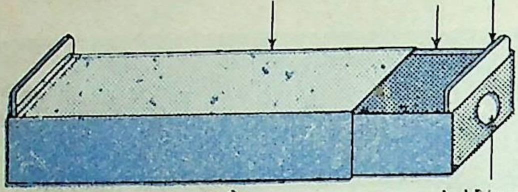

दूरदर्शी तैयार

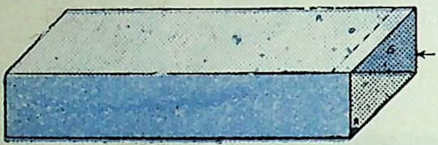

चित्र १

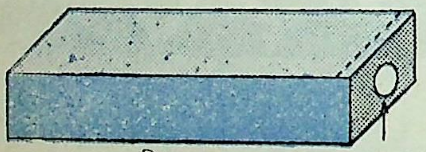

चित्र २

चित्र ३

इसी प्रकार दूसरे वर्ग को छोटी नली पर चिपका दिया जाए चित्र (२)।

५. अब आपको लेन्सों के लिए स्टैण्डों की भी आवश्यकता होगी। इसके लिए दो गत्ते के टुकड़े १४×५·७५ तथा १४×५·५ से. मी. के लेकर उन्हें बीच से मोड़कर दुहरा कर लिया। ऊपर से १ से. मी. भाग छोड़कर शेष भाग के मध्य से क्रमशः 'क' तथा 'ख' लेन्सों के व्यास से थोड़े कम व्यास के वृत्त काट लिये। पहले गत्ते की तहों के बीच 'क' लेन्स इस प्रकार रखा कि कटे भागों के बीच में लेंस भली प्रकार फिट बैठ जाये। लेंस से गत्ते में कटा भाग छोटा होने के कारण लेन्स बाहर नहीं गिरेगा। गत्ते की तहों को सिरे पर कागज की पट्टियां चिपकाकर बन्द कर दिया तथा इसे बड़ी नली के बन्द सिरे की ओर कटे भाग में से नली में रख दिया। इसी प्रकार 'ख' लेंस स्टेण्ड बनाकर उसे छोटी नली में, बन्द सिरे की ओर कटे भाग में से नली में खड़ा कर दिया (चित्र ३)।

६. बड़ी नली के खुले सिरे में छोटी नली का खुला सिरा डाल दिया। अब छोटी नली बड़ी में आगे पीछे भली प्रकार घूम सकेगी।

लीजिए आपका दूरदर्शी तैयार है। अब इससे अपने दूर खड़े किसी मित्र अथवा किसी अन्य वस्तु को इस प्रकार देखिये कि दूरदर्शी का 'ख' लेन्स आँख के पास तथा 'क' लेन्स वस्तु की ओर हो। वह वस्तु आपको उलटी तथा अस्पष्ट दिखलाई देगी। छोटी नली को आगे पीछे करके उसे उस स्थिति पर स्थित कीजिए कि वह दूर की वस्तु स्पष्ट दिखाई देने लगे।

इस पत्थर में जान है

मध्य यूराल की पर्वतमाला से एक ऐसा विचित्र पत्थरनुमा खनिज प्राप्त किया गया है जिसके विशिष्ट गुणों के कारण उसे वर्मीक्युलाइट अर्थात् कीड़ेनुमा पत्थर नाम दिया गया है। गरम किये जाने पर यह पत्थर ऐंठता है, आकार में २० गुना तक बढ़ जाता है और हलका तथा स्पंजनुमा भी हो जाता है जिसके कारण उसमें पानी सोखने की क्षमता भी आ जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपके प्रश्न

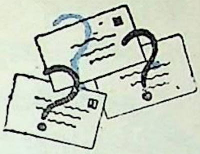

उमेशचन्द्र चौबे (५६८२) ललितपुर

प्रश्न—कभी-कभी चन्द्रमा के चारों ओर एक गोल घेरा दिखाई देता है, वह क्या है ?

उत्तर—वायुमण्डल में व्याप्त हिमकणों द्वारा परावर्तित प्रकाश किरणें उस गोले के रूप में दिखती हैं।

पारसनाथ (७८४२) डाल्टनगंज

प्रश्न—एन्टी-टाक्सीन (anti-toxin) क्या है ?

उत्तर—शरीर के स्वस्थ अंगों द्वारा उत्पादित वह पदार्थ जो शरीर में स्थित बैक्टीरिया के जैविक-विष को नष्ट करता रहता है। यह पदार्थ संश्लेषित रूप से भी बनाकर आवश्यकतानुसार शरीर में प्रविष्ट कराया जाता है।

कृष्णचन्द्र अग्रवाल (५२९२) आगरा

प्रश्न—रेडियो-सक्रिय स्ट्रान्शियम का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर—इसका प्रचलित नाम स्ट्रान्शियम–९० है। परमाणुबम के विस्फोट के बाद यह वायुमण्डल में ऊपर उठता हुआ स्ट्रेटोस्फीयर तक पहुँच जाता है। वहाँ वर्षा के जल में घुलकर पुनः पृथ्वी पर बरसता है। इसका मिश्रित जल वनस्पतियों पर गिरता है जिसके फलस्वरूप वे विषाक्त हो जाती हैं। मनुष्यों तथा प्राणियों द्वारा उन वनस्पतियों के उपयोग से अस्थि-कैन्सर (Bone Cancer) के विभिन्न घातक रोग हो जाते हैं।

अरुणकुमार भट्ट (९९७८) बुरहानपुर

प्रश्न—सूखने के लिए डाले हुए कपड़े रात की शीतल हवा की अपेक्षा दिन की गर्म हवा में क्यों जल्दी सूखते हैं ?

उत्तर—गीले कपड़ों की आर्द्रता सोखने के लिए हवा का गर्म होना आवश्यक है।

मांगीलाल शर्मा (९९५२) मण्डफिया

प्रश्न—स्पंज किस पदार्थ से तैयार किया जाता है ?

उत्तर—यह एक समुद्री जीव का कंकाल है।

प्रेमसिंह (३८९) गंगानगर

प्रश्न—गन-मेटल में क्या-क्या पदार्थ, किस मात्रा में मिलाये जाते हैं ?

उत्तर—इसमें मुख्य धातु ताँबा होती है जिसमें टिन १०% जस्ता १०% और सीसा ५% मिलाया जाता है।

कु. शकुन्तला राउत (७४०५) छिन्दवाड़ा

प्रश्न—यदि यह सत्य है कि सर्प के कान नहीं होते तो वह बीन की मधुर ध्वनि पर मुग्ध क्यों हो जाता है ?

उत्तर—सर्प के कान नहीं होते। बीन और बजाने वाले को केवल वह अपनी दृष्टि में बाँधे रहता है और बीन के साथ ही हिलता है। ध्वनि का अनुभव यह केवल भूमि पर होने वाले प्रकम्पनों से अपनी त्वचा द्वारा करता है।

रमेशप्रसाद शर्मा (६२६६) शिमला

प्रश्न—घड़ियों का आविष्कार किस प्रकार किया गया ?

उत्तर—यन्त्रचालित घड़ियों का प्रारम्भ दीवार घड़ी से हुआ जिनके आविष्कार का श्रेय जर्मनी के हेनरी डी विक (१३६२) को है। घड़ियों के क्रमिक इतिहास के लिए विज्ञान-लोक, मार्च ६२ का अंक देखिए।

जानकीप्रसाद गर्ग (९६२४) सबलगढ़

प्रश्न—टाइपराइटर का आविष्कार किसने किया ?

उत्तर—अमरीका के क्रिस्टाफर शोल ने (जीवनी देखिए विज्ञान-लोक अक्टूबर १९६२)

पन्नालाल (९४२७) चौकआरा (बिहार)

प्रश्न—लूथियम नामक तत्त्व की खोज का श्रेय किसको है ?

उत्तर—क्लीव (१८७९) को।

रमेशकुमार सोनी (९३६९) पेण्ड्रारोड

प्रश्न—कुछेक व्यक्ति, बायें हाथ से ही प्रत्येक कार्य बखूबी किस प्रकार कर लेते हैं ?

उत्तर—प्रारम्भ ही से अभ्यास पड़ जाने के कारण।

मनोजकुमार वर्मा (८१३) पटना

प्रश्न—नाइटशेड वनस्पति को बेलाडोना अर्थात् सौन्दर्यमयी क्यों कहा जाता है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर—इसका सत् एट्रोपीन (atropene) के नाम से नेत्रचिकित्सा में महत्त्वपूर्ण है। इसका उपयोग प्राचीन इटालियन महिलाएँ खूब जानती थीं और सही रूप में करती भी थीं, क्योंकि इसकी बूँद दो बूँद पुतलियों को फैला देती है। फैली हुई पुतलियों से नेत्र-परीक्षण में तो सहायता मिलती ही है, नेत्र बड़े भी दिखते हैं जो सौन्दर्य का प्रतीक माने जाते हैं।

रणवीरसिंह (४४२) सिरोही

प्रश्न—सल्फीकृत (sulphuretted) हाइड्रोजन प्राप्त करने का स्वचालित उपकरण कौन-सा है?

उत्तर—किप्प (१८६०) द्वारा तैयार किया गया उपकरण इस कार्य के लिए श्रेष्ठ है। इसमें गैस निर्धारित दाब पर संचित रहती है और ज्यों-ज्यों आवश्यकता पड़ती है यह इसमें स्वयं ही उत्पन्न होती रहती है।

चन्द्रभूषण गिरोजा (३४७१) बम्बई

प्रश्न—मोटरकार के आगे-पीछे के पहिये परस्पर कभी असमान गति से भी चलते हैं क्या? कब और किस प्रकार?

उत्तर—तेज चलती हुई कार के पहिये मोड़ पर विभिन्न गति के हो जाते हैं। यद्यपि यह विचित्र प्रतीत होता है किन्तु उसमें लगे डिफरेन्शियल गीयर का यही काम है। इसमें प्रत्येक पहिये की आधी आधी शाफ्ट केन्द्रीय क्राउनव्हील से छोटे पिनियन गीयरों द्वारा सम्बन्धित रहती है।

आलोक भट्टाचार्य (८७००) कानपुर

प्रश्न—पिता-पुत्र को एक साथ नोबेल पुरस्कार मिलने का कोई दृष्टान्त है क्या?

उत्तर—जी हाँ। विलियम एच ब्रेग (१८६२-१९४२) ने १९१५ में अपने पुत्र विलियम एल ब्रेग (जन्म–१८९०) के साथ एक्स-रे तथा मणिभ-संरचना पर संशोधन प्रस्तुत करके भौतिकी का नोबेल पुरस्कार सम्मिलित रूप से प्राप्त किया था।

सुरेन्द्रकुमार (६०६४) जबलपुर

प्रश्न—साइक्लोट्रान का आविष्कार किसने और कब किया?

उत्तर—कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी के प्रो. अर्नेस्ट आरलेण्डो लारेन्स ने १९३१ में।

परीक्षितकुमार मदान (२६४२) कुरुक्षेत्र

प्रश्न—हाइड्रोमानिक्स क्या है?

उत्तर—बिना मिट्टी, खाद की बागवानी और कृषि-विद्या। इसमें केवल रासायनिक घोल ही काम में लिये जाते हैं।

श्यामबिहारी (१०१८) अमृतसर

प्रश्न—तेजी से घूमती हुई छड़ की गति किस यंत्र द्वारा मापी जा सकती है?

उत्तर—स्ट्रोबोस्कोप द्वारा।

कौशलेन्द्रप्रसाद (५८५) मोतिहारी (बिहार)

प्रश्न—किस वृक्ष से मलेरिया की दवा बनायी जाती है?

उत्तर—सिन्कोना-वृक्ष से।

आनन्दनारायण श्रीवास्तव (२५२७) लखनऊ

प्रश्न—सल्फा-ड्रग्ज क्या है?

उत्तर—तीव्र रोगाणुरोधक (antiseptic) औषधियाँ हैं। जर्मनी की प्रसिद्ध बायर (Bauyer) कम्पनी में काम करते हुए रसायनज्ञ डोमेक (Domagk) ने १९३५ में इन सल्फोनामाइड दवाओं का आविष्कार किया था। उन दिनों रोगाणुरोधक अन्य औषधियाँ प्रभावकारी होते हुए भी इतनी हानिरहित नहीं थीं जो निस्संकोच ले ली जातीं। अतः इनके आविष्कार ने एक आश्चर्यजनक नवीनता प्रस्तुत की है। ये औषधियाँ कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन तथा सल्फर की जटिल यौगिक हैं।

रामानुजप्रसाद सिंह (५७५८) गया

प्रश्न—सन् १९६१ में भौतिकी का नोबेल पुरस्कार किसे दिया गया?

उत्तर—दो वैज्ञानिकों को सम्मिलित रूप में दिया गया—रावर्ट हैफस्टेडटर को परमाणु नाभिक के अनुसन्धान पर तथा रुडोल्फ मोस बेउर को 'मोस बेउर प्रभाव' के उपलक्ष्य में।

इस स्तम्भ के लिए प्रश्न पोस्ट कार्ड पर लिखकर कृष्णा दीदी के पते पर भेजिए। पोस्ट कार्ड पर प्रश्न तथा अपना नाम, पता और सदस्य संख्या के अतिरिक्त और कुछ न लिखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

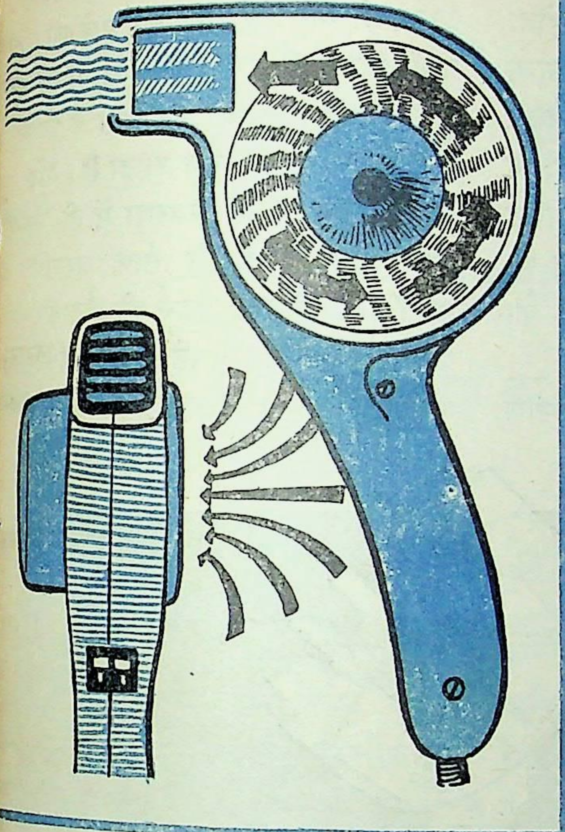

स्विच दबाइए बाल सुखाइए

शिम्भू शरण (स. सं. १५०४)

बालों को धोकर तुरन्त सुखा लेना अब कोई समस्या नहीं रहा। बिजली का यह छोटा-सा यन्त्र प्राय: ही देखने में आता है। यद्यपि हमारे यहाँ इसका प्रचलन अधिक नहीं हुआ है तथापि हेयर कटिंग सैलूनों में इसका प्रयोग दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।

सैद्धान्तिक रूप से यह केवल एक हस्त-चालित बिजली का पंखा प्रतीत होता है जिसमें एक ओर से सामान्य वायु प्रवेश करती है और दूसरी ओर से अर्थात् नली के द्वारा इतने उच्च ताप की बनकर निकलती है जो बालों को शीघ्र ही सुखा सके। सरल रचना होते हुए भी इसके निर्माणकों ने अन्यान्य विद्युत-उपकरणों (पंखा, इस्त्री, स्टोव, हीटर आदि) की भाँति इसमें भी उस प्रत्येक सावधानी की व्यवस्था रखी है जो इसका असावधानी से प्रयोग करने पर हो जाए। उदाहरणार्थ, असावधानीवश इसके पंखे का स्विच दबाने से पहले ही हीटर का स्विच दबा देने पर हीटर के तार जल जाएँगे और हीटर का स्विच बन्द किये बगैर ही इस यन्त्र को आड़ा-टेढ़ा, चाहे जहाँ रख देने से यन्त्र जल कर नष्ट हो सकता है।

जैसा कि चित्र में दिखाया गया है, एक बहुत ही सूक्ष्म हार्सपावर की इलेक्ट्रिक मोटर एक नन्हें पंखे से जुड़ी रहती है। विद्युतशक्ति द्वारा इस मोटर के चलने से यह पंखा तेजी से घूमता है। चलने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवस्था में इसके ऊपर का केसिंग बन्द रखना पड़ता है। तभी उस संकुचित दायरे में एक निश्चित वायु का प्रवाह उत्पन्न होता है। उसी प्रवाह में एक ओर से सामान्य वायु अन्दर को खिंचती है जो आगे चलकर हीटर पर से गुजरती हुई तप्तावस्था में नली के बाहर निकलती है। नली के निकट हीटर लगा होने से वहीं एक रुकावट भी लगी रहती है ताकि हाथ या अँगुली का कोई भाग गर्म हीटर को स्पर्श न करे।

हैण्डिल पर दो स्विच रहते हैं। लाल स्विच से हीटर तथा काले से पंखा चलता है। इसमें सुरक्षा के भी दो प्रबन्ध हैं। प्रथम तो यह कि जब तक पंखे का स्विच नहीं दबाया जाता, हीटर का स्विच नहीं दबेगा। दूसरे यह कि नली के निकट ही एक और सुरक्षा-स्विच रहता है। यदि यन्त्र को चालू हीटर की अवस्था में ही रख कर भूल जाया जाए तो ताप अत्यधिक बढ़ेगा। इससे पहले ही यह हीटर को बन्द कर देगा। पुनः चालू करने से पहले इस सुरक्षा स्विच को मूल अवस्था में लाना आवश्यक होगा।

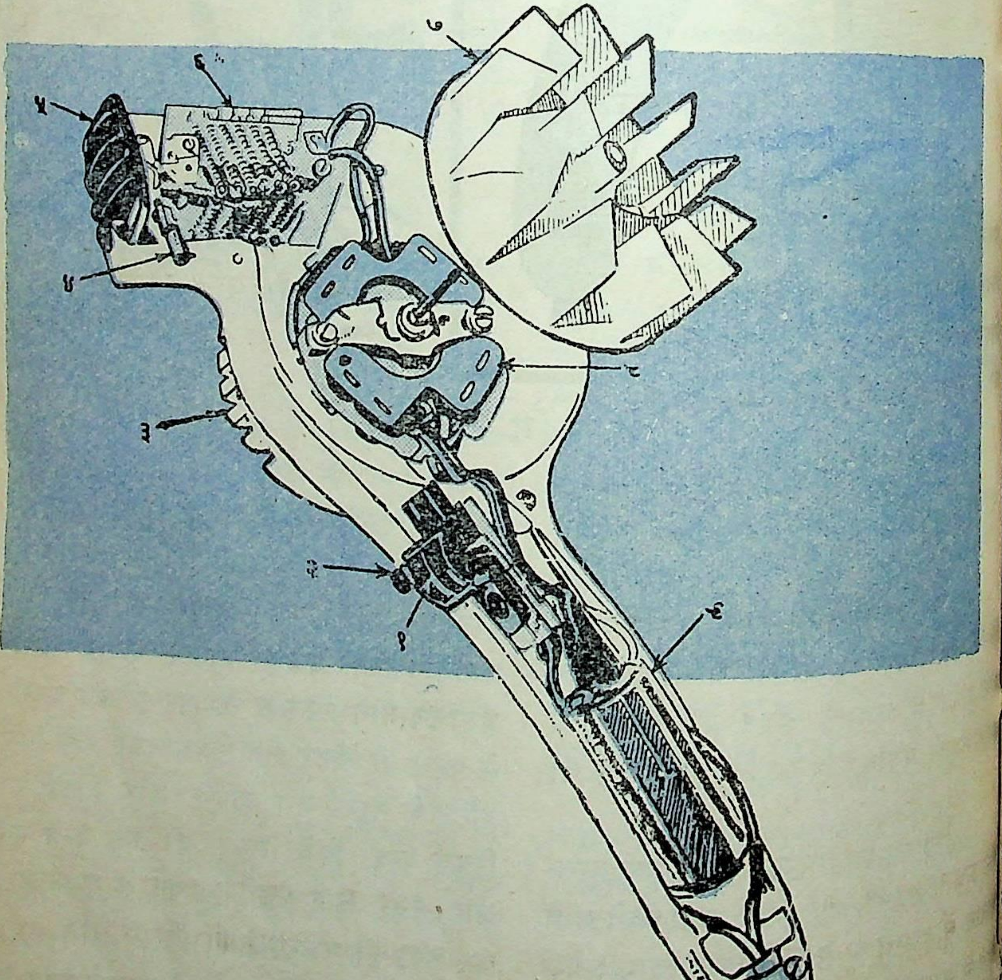

बाल सुखाने की मशीन (भीतरी दृश्य)—१. मोटर-स्विच, २. हीटिंग-स्विच, ३. शीतल वायु-प्रवेशक छिद्र, ४. री-सेट बटन, ५. ताप-आवरण, ६. तापक-क्वायल, ७. पंखा, ८. नन्हा इलेक्ट्रिक मोटर, ९. धारा-नियन्त्रक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर रेलवे

सूचना

भारी लगेज का बुकिंग

तथा

साथ में लगेज का लाना-ले जाना

समय-समय पर सूचित करते रहने के बावजूद देखा गया है कि यात्रीगण अब भी अपने साथ भारी बक्से, ट्रंक तथा सूटकेस आदि अपने साथ यात्री ट्रेन में लिये चलते हैं जिससे अन्य यात्रियों को बेहद तकलीफ होती है। अतः इण्डियन रेलवेज कान्फ्रेन्स एसोसिएशन के नियम नं. ६०६ के कोचिंग टैरिफ नं. १८, भाग १ को संशोधित किया गया है जो १ अगस्त, १९६३ से निम्न भाँति लागू होगा :

६०६—वातानुकूलित तथा प्रथम श्रेणी के यात्रियों के लिए
साथ रखने योग्य लगेज

यात्री अपने साथ डब्बे में वे ही छोटे अदद निजी सामान के तौर पर रख सकेगा जिनकी उसे यात्रा के दौरान में जरूरत हो और जो डब्बे में इस प्रकार रखे जा सकें कि अन्य यात्रियों को असुविधा न हो और यात्रियों के उठने-बैठने तथा सोने और सुविधापूर्वक चलने-फिरने के लिए आवश्यक स्थान में कमी न करें।

ऐसे ट्रंक, सूटकेस और बक्से जिनकी बाहरी लम्बाई १०० से. मी., चौड़ाई ६० से. मी. और ऊँचाई २५ से. मी. से अधिक हो, अपने साथ डब्बे में न रखे जा सकेंगे और उन्हें ब्रेकवान में रखना आवश्यक होगा। इस नियम के उल्लंघनकर्ता यात्री को ऐसे सामान का वजन में बगैर किसी कटौती या रिआयत के, पूरा चार्ज देना होगा। साथ ही, ऐसे सामान को, जहाँ भी चेकिंग में पाया जाएगा, वहीं से आगे की यात्रा के लिए ब्रेकवान में भेज दिया जाएगा। चार्ज में रिआयत केवल उसी दूरी तक के लिए दी जाएगी, जितनी दूर वह सामान ब्रेकवान में सफर करेगा। जितनी दूरी तक ऐसा सामान यात्रियों के डब्बे में ले जाया गया होगा, उतनी दूरी तक का चार्ज, बगैर किसी रिआयत के, पूरा-पूरा वसूल किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाएगा। उपरोक्त नियम ऐसे लगेज पर लागू नहीं किया जाएगा जो किसी यात्री अथवा दल द्वारा पूरा डब्बा रिजर्व कराकर उसमें ले जाया जा रहा हो। इसके अपवाद में वे वस्तुएँ भी सम्मिलित रहेंगी—बिस्तरे, टोकरियाँ, हैण्डबैग, छतरियाँ, छड़ियाँ, सुराहियाँ आदि। इण्डियन रेलवेज कान्फ्रेन्स एसोसिएशन के नियम नं. ६०५ के टैरिफ नं. १८, भाग १ की धारा सं. १ तथा ४ में गिनायी हुई वस्तुएँ किसी भी हालत में निजी सामान की तरह डब्बे में अपने साथ न ले जायी जा सकेंगी। ऐसा समस्त सामान यात्रीगण अपनी निजी जिम्मेदारी पर ही ले जा सकेंगे।

जो भी यात्री इस नियम का उल्लंघन करेगा, स्वयं को अभियोग का उत्तरदायी बनाएगा।

ये नियम (६०६) द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी के यात्रियों पर भी लागू रहेंगे तथा इस नियम के शीर्षक को निम्न भाँति परिवर्तित करके पढ़ा जाए :

६०६ (१) द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी के यात्रियों के लिए
साथ रखने योग्य लगेज

—चीफ कमर्शियल सुपरिंटेंडेंट

यहाँ से काटिए

विज्ञान क्लब सदस्यता, विज्ञान-लोक

कृष्णा दीदी,

मुझे विज्ञान क्लब का सदस्य बना लीजिए।

जन्म-दिन ____________ आयु ____________

नाम ____________

घर का पता ____________

____

स्कूल का नाम ____________

शिक्षा ____________ रुचि ____________

यहाँ से काटिए

यहाँ से काटिए

जगदीश मेहरा द्वारा दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा में मुद्रित एवं श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा के लिए प्रकाशित
[मुखपृष्ठ बृजवासी फाइन आर्ट ऑफसेट वर्क्स, मथुरा में मुद्रित]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ENGLISH WORKBOOK

- A Modern Course for Writing as well as Reading through the medium of Hindi.
- The Course provides exercises in spelling, punctuation, very simple grammar, sentence-structure, picture-composition, story-writing, cross-word puzzles, letter-writing and comprehension.
- The exercises are fresh and original, varied and interesting, and are carefully *graded*.
- An interesting technique is used to teach the young pupils how to write sentences correctly. They learn by doing, and by doing *correctly*.
- Exercises are so arranged that even slow children are sure to make *rapid progress*.
- Illustrations are given to attract the child's attention and to awaken his interest in the subject.
- The series is based upon a limited vocabulary of 1200 words.
- The workbooks are graded and are suitable for use in middle and high schools.

Book I........Price : 80 nP.
Book II........Price : Re.1·00
Book III........Price : Re.1·20

For further enquiries please write to :

SRI RAM MEHRA & Co.
Educational Publishers, AGRA

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Price : 75 nP. August 1963 Regd. No.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

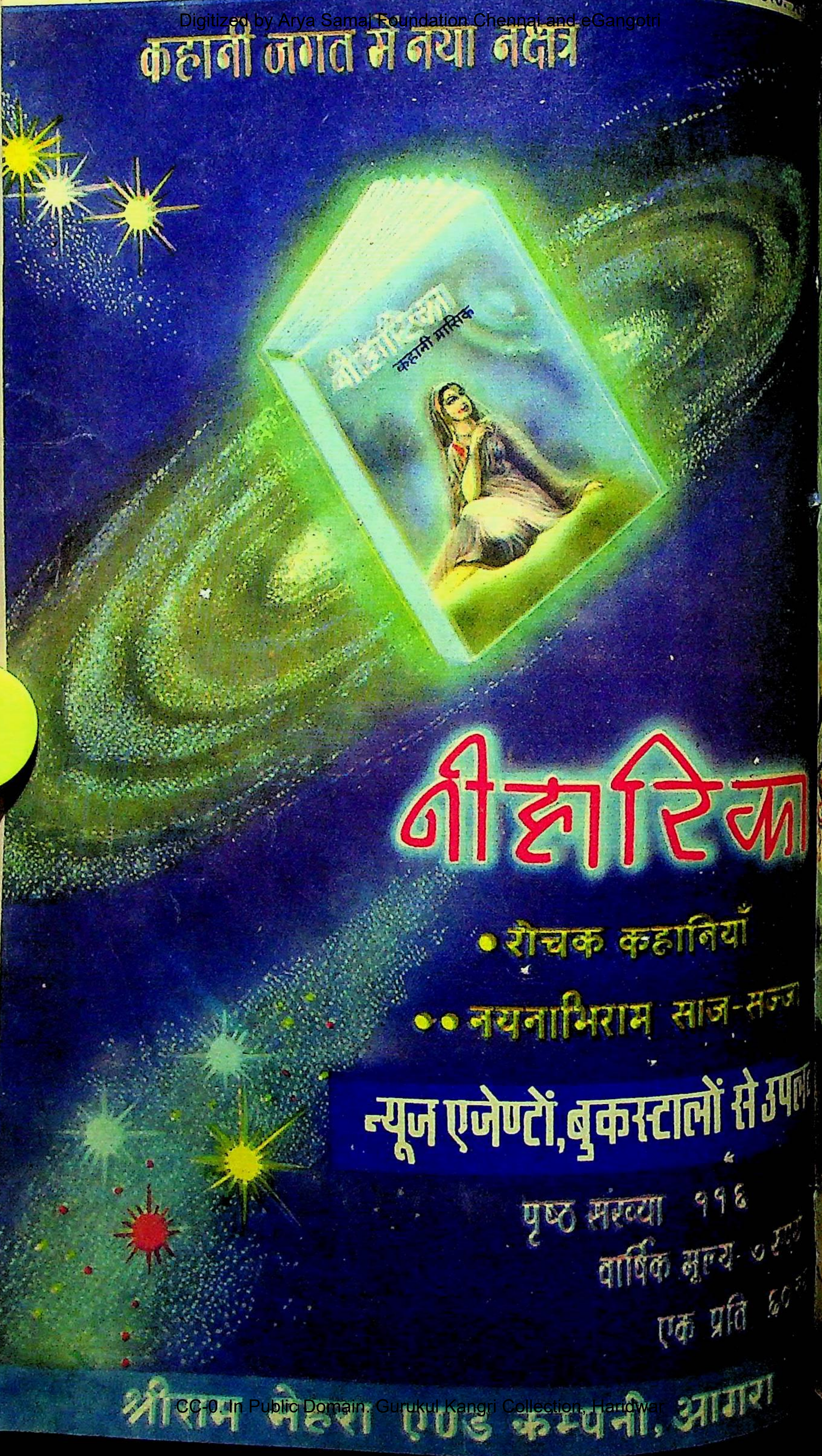

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar